व्यसन छोड़ो जीवन मोड़ो

लेखक

जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट
श्री देवेन्द्र मुनि जी म०

प्रकाशक

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
गुरु पुष्कर मार्ग, उदयपुर (राज०) 313001

महास्थविर पूज्य दाद गुरु श्री ताराचन्द जी म० की पुण्य स्मृति में प्रकाशित

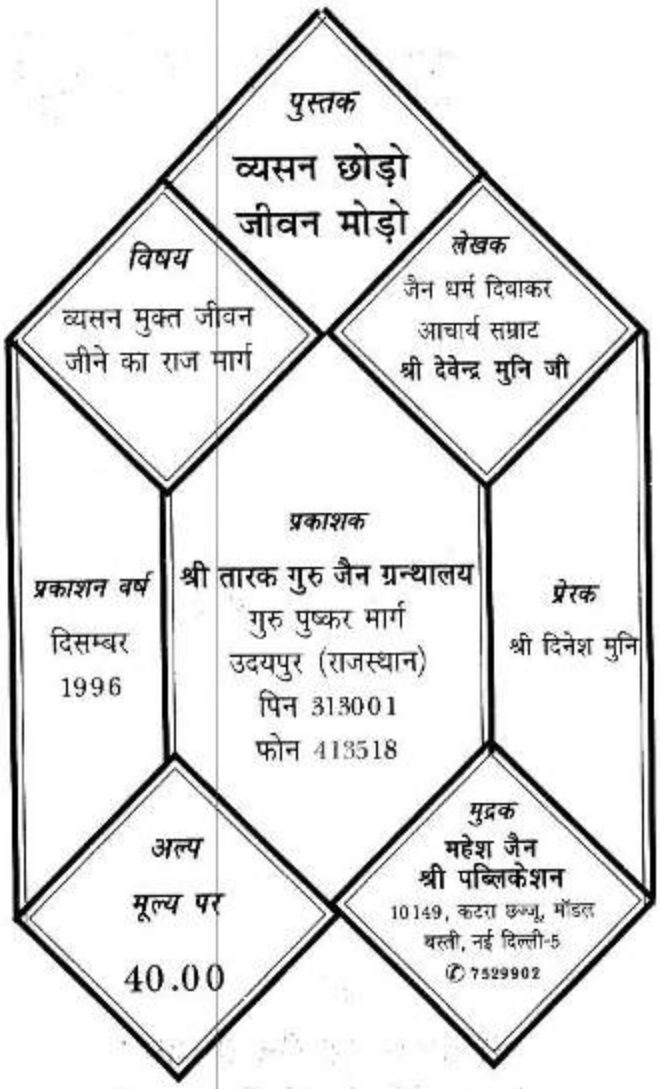

समर्पण

जिनका तप और त्याग से
जीवन पुष्प महकता रहा
जो संयम साधना
तपः आराधना
और मनोमंथन कर
साधना के
उच्चतम शिखर को स्पर्श किया
जो जन-जन के
पावन प्रेरण स्रोत थे
उन्हीं परम श्रद्धेय
पूज्य दादा गुरुदेव
श्री ताराचन्द जी म० सा०
के पावन चरण कमलों
में
सादर समर्पित !

—आचार्य देवेन्द्र मुनि !

प्रकाशकीय प्रकाश

अपने प्रबुद्ध पाठकों के कर कमलों में व्यसन छोड़ो जीवन मोड़ो ग्रन्थ रत्न समर्पित करते हुए हृदय आनन्द विभोर है। आज भारत में व्यसनों की बहार है। नित नये व्यसन जीवन में आ रहे हैं। बालक वृद्ध और युवक सभी व्यसनों के प्रवाह में प्रवाहित हो रहे हैं। वे तनाव से मुक्त होने के लिए व्यसनों का प्रयोग प्रारंभ करते हैं। पर एक दिन व्यसन उन पर इतने हावी हो जाते हैं, कि वे अनेक नए तनावों से ग्रसित हो जाते हैं। व्यसनों के कारण उनका शरीर रोग का घर बन जाता है।

आजकल चमकते हुए कागजों की पुड़ियाओं में पान पराग आदि गुटखे के लुभावनी आकृति में पैकेट देखकर बालक उसे खाने के लिए ललक उठता है। उन गुटकों में ऐसे पदार्थ होते हैं जो बहुत ही स्वादिष्ट व सुगंधित होते हैं। बालक सोचता है कि ये अत्यन्त सुगंधित हैं, स्वादिष्ट हैं पर उससे जबान व गले का कैंसर हो जाता है। जो फूल अभी तक पूर्ण रूप से खिले ही नहीं वे असमय में रोग से संग्रस्त होकर मुरझा जाते हैं।

परमादरणीय जैनधर्म दिवाकर पूज्य आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्र मुनिजी म० सा० समय-समय पर व्यसनों को लेकर अपने प्रवचनों में प्रकाश डालते रहते हैं। उन्होंने व्यसन मुक्ति आंदोलन प्रारंभ किया। आचार्य श्री ने व्यसनों पर जो निबंध लिखे उनका प्रस्तुत पुस्तक में संकलन व आकलन है। आशा है आचार्य श्री के मौलिक चिन्तन से भूले-भटके राहियों को मौलिक दृष्टि प्राप्त होगी और वे जीवन को व्यसन मुक्त बनाकर अपने जीवन को सुखी बनायेंगे।

इनकी शुभकामनाओं के साथ!

चुन्नीलाल धर्मावत (कोषाध्यक्ष)
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर

श्रीमान् लाला जैन प्रकाश जैन–एक परिचय

जीवन की परिभाषा करते हुए भारत के महामनीषियों ने कहा कि जीवन उसी का धन्य है जिसके जीवन में स्नेह, सद्भावना, प्रेम और परोपकार के सुगन्धित पुष्प खिल रहे हों और जिसकी मधुर सौरभ जन-जन के मन को आकर्षित करती हो। प्रस्तुत परीक्षण प्रस्तर पर जब हम लाला जैन प्रकाशजी के जीवन को कसते हैं तो लगता है कि उनका जीवन एक सच्चा और अच्छा जीवन है। लाला जैन प्रकाशजी जैन के पूज्य पिताश्री का नाम श्रीमान् प्यारे लाल जी जैन और मातेश्वरी का नाम पूरण देवी जैन। आप पहले सियालकोट के नारोवाल शहर के निवासी रहे। जो बाद में पाकिस्तान चला गया। 22 वर्षों से आप भारत की राजधानी दिल्ली में निवास कर रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी का नाम धर्मानुरागिनी सौ. पुष्पलता जैन है। आपके दो पुत्र हैं–अनिल कुमार जी व सुनील कुमार जी। आपकी तीन सुपुत्रियाँ हैं–सौ. मीना जैन, सौ. लीना जैन, सौ. नीलू जैन। श्री अनिल कुमार जी की धर्मपत्नी का नाम सौ. पूनम जैन है। उनके एक पुत्र–आयुष जैन व एक पुत्री कु. प्रियांशि जैन है। सुनील कुमार जैन जी की धर्मपत्नी का नाम सौ. अनु जैन है तथा उनकी दो पुत्री हैं कु. रिहिमा जैन व कुमारी सुमेधा जैन तथा आपके सुपुत्र का नाम कुलदीपक है।

आपश्री का दिल्ली में ही ब्रांस पार्ट्स का व्यवसाय यूनिवर्सल ब्रास कम्पोनेंट्स (Universal Borass Components) फर्म के नाम से है।

आपका पूरा परिवार धर्मनिष्ठ परिवार है। परम श्रद्धेय महामहिम आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी म. के प्रति आपकी अनन्य आस्था है। सन् 1996 का वर्षावास दिल्ली शक्तिनगर में हुआ। उस समय आपके परिवार ने खूब सेवाभक्ति की। आचार्य सम्राट् के व्यसन छोड़ो, जीवन मोड़ो ग्रन्थ की 500 प्रति के प्रकाशन में आपने अपना सहयोग देकर अपनी हार्दिक भक्ति को प्रदर्शित किया है। तदर्थ कोटि कोटि साधुवाद!

चुन्नीलाल धर्मावत,
कोषाध्यक्ष
श्री तारक जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, राजस्थान

अपनी बात : अपनी कलम से...

भारत के तत्त्वदर्शी महामनीषियों ने जहाँ पर आत्मा-परमात्मा; जीव-जगत्, पुनर्जन्म, कर्म आदि विभिन्न विषयों पर गहराई से चिन्तन किया है। वहाँ पर जीवन के संबंध में चिंतन करते हुए उन्होंने कहा—श्रेष्ठ जीवन वह है जो व्यसन से मुक्त है। जब तक व्यक्ति की दृष्टि विशुद्ध नहीं होती तब तक सृष्टि विशुद्ध नहीं हो सकती। यथार्थ बोध के अभाव में जीवन में परिवर्तन नहीं हो सकता। जीवन की पवित्र चादर पर व्यसन के काले-कजराले दाग जब दिखलायी दें, तभी उन दागों को धोने के लिए व्यक्ति प्रस्तुत होगा। निर्व्यसन जीवन जीने के लिए व्यसनों का त्याग आवश्यक है। व्यसन छोड़ने से ही व्यक्ति सुखपूर्वक जी सकता है।

व्यसन शब्द संस्कृत भाषा का है। जिसका अर्थ है, कष्ट। जिन प्रवृत्तियों का परिणाम कष्टप्रद हो उन्हें व्यसन करते हैं। एक संस्कृत साहित्य के कवि ने तो व्यसन को मृत्यु से भी अधिक कष्टप्रद कहा है। उसी के शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं व्यसनी प्रतिपल, प्रतिक्षण नीचे की ओर गति करता है। उसका निरन्तर पतन होता है, जबकि अव्यसनी का जीवन प्रतिपल प्रतिक्षण उन्नति की ओर अग्रसर होता है। व्यसनी मृत्यु के पश्चात् भी अधोगति की ओर जाता है। जबकि निर्व्यसनी उच्च गति स्वर्गादि को प्राप्त करता है।

व्यसनस्य मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो ब्रजति, स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥

व्यसन का सीधा अर्थ भी यही है, व्यसन दो शब्दों के मेल से बना है। वि + असन। असन का अर्थ—भोजन है, तो व्यसन शब्द का अर्थ

हुआ—विकृत भोजन। विकृत वस्तुओं/आदतों को ग्रहण करना। उसमें लिप्त हो जाना।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक ने व्यसन को बुरी आदतों में लिप्त हो जाना (Addiction to evil habits) कहा है और इसके लिए debauchery शब्द दिया है। इस शब्द का वाच्यार्थ है—ऐसी आदतें जो व्यक्ति को शारीरिक रूप में अक्षम बनाती हैं, मानसिक कमजोरी लाती हैं, धन की हानि करती हैं और सद्गुणों का विनाश करती हैं।

वस्तुतः व्यसन वे विष वृक्ष हैं जो चारों ओर के वातावरण को जहरीला बना देते हैं। यह कीचड़ वाले ऐसे गड्ढे हैं जो आकर्षक पुष्पों से ढंके हुए हों और जैसे ही कोई व्यक्ति लालायित होकर उन पुष्पों के पास जाता है तो दलदल में ऐसा गहरा फँस जाता है कि उसका निकलना कठिन हो जाता है। अमरबेल के समान व्यसन जिस पुरुष रूपी वृक्ष से लिपटते हैं उसका सर्वनाश कर देते हैं।

जैनाचार्य ने सात व्यसन बतलाए हैं—1. जुआ खेलना, 2. मांसाहार, 3. मदिरापान, 4. वेश्यागमन, 5. शिकार, 6. चोरी, 7. परस्त्रीसेवन।

इन सात व्यसनों के समान ही आधुनिक युग में कामोत्तेजक अश्लील पुस्तकों का पठन-पाठन, रोमांटिक-जासूसी उपन्यास, चलचित्रों के अश्लील दृश्य, बीड़ी सिगरेट, हैरोइन, ब्राउन शुगर, कोकीन आदि नशीली वस्तुएँ भी अत्यन्त हानिप्रद हैं। नवयुवकों में तो इन नशीले पदार्थों की आदत व्यसन की सीमा तक पहुँच गई है।

वस्तुतः कोई भी आदत व्यसन तभी बनती है, जब व्यक्ति उसमें आकंठ निमग्न हो जाता है, डूब जाता है, लिप्त हो जाता है, उसे पाये बिना वह तीव्र बेचैनी अनुभव करता है। ऐसी दशा मानव के लिए अत्यन्त भयंकर है। व्यसन प्रत्येक व्यक्ति के लिए हेय है, त्याज्य है। इनसे शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय सभी प्रकार की हानि होती है। जुए से धन का नाश, मानसिक चिन्ता, मांसाहार से सभी सद्गुणों का नाश होता है। इसी प्रकार अन्य व्यसन भी अनैतिकता की अभिवृद्धि करते हैं। सुखी और शान्त जीवन जीने के लिए

मानव को सात्विक व व्यसनमुक्त होना चाहिए। व्यसनमुक्त जीवन ही सात्विक जीवन है।

वर्तमान युग में आधुनिकता के नाम पर फैशन परस्ती पनप रही है। फैशन के बहाने नित नये व्यसनों की बाढ़-सी आ रही है। वेशभूषा-सौन्दर्य प्रसाधन पहनने-ओढ़ने के ढंग चित्रपटों के द्विअर्थी संवाद, कामुक नृत्य, प्रभृति; जन-जीवन पर हावी होते जा रहे हैं। ऐसे-ऐसे फैन्सी शो आयोजित किये जाते हैं जहाँ वेशभूषा से स्त्री-पुरुष को पहचानना भी कठिन है। सौन्दर्य प्रसाधन क्रीम-स्नो पाउडर आदि जीवन की अनिवार्यता बनती चली जा रही है। जुए के भी नित नये रूप आ रहे हैं। शराब का प्रचलन दिनों-दिन बढ़ रहा है। अंडे को आधुनिकता के रंग में रंगे लोग मांस मानने को प्रस्तुत नहीं। चोरी, रिश्वत, कमीशन आदि का रोग समाज में व्याप्त हो गया है। फैशन परस्ती और व्यसन का चोली-दामन का संबंध हो रहा है। सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श लुप्त हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में समय-समय पर लिखे हुए मेरे निबन्धों का संकलन है इसलिए पुनरावृत्ति होना असंभव नहीं है। आज देश में व्यसन से मानव मुक्त नहीं होगा तो सुखी जीवन जी नहीं सकता। निव्यर्सन जीवन ही सुख का मूल मंत्र है। और इसी अभियान को लेकर हम प्रयत्नशील हैं कि हमारा देश अपने पवित्र आदर्श को सदा कायम रखे। दादागुरु महास्थविर श्री ताराचन्द जी म० सा० के पुण्य तिथि के पावन प्रसंग पर यह नन्ही-सी कृति उनके पावन चरण कमलों में समर्पित करते हुए हृदय आनन्द विभोर है।

—आचार्य देवेन्द्र मुनि
जैन स्थानक
शक्तिनगर, दिल्ली।
२४-११-७६

क्या कहाँ ?

१.	व्यसन छोड़ो, सुख से जीयो	१-३३
२.	मानवीय आहार : शाकाहार	३४-४५
३.	शुद्ध आहार : शाकाहार	४६-५९
४.	मांसाहार : व्याधियों का आगार	६०-६८
५.	शाकाहारी अंडा : एक वंचनापूर्ण भ्रांति	६९-७५
६.	जर्दा-धूम्रपान : समस्या और समाधान	७६-८६
७.	जर्दा-धूम्रपान : नुकसान ही नुकसान	८७-९५
८.	तम्बाकू व्यसन के 'पंचमकार'	९६-१०४
९.	और...यों हो जाता है कोई शराबी!	१०५-११७
१०.	मद्यपान : समस्या और समाधान	११८-१२६
११.	मदिरा करती है उत्पात्	१२७-१३६

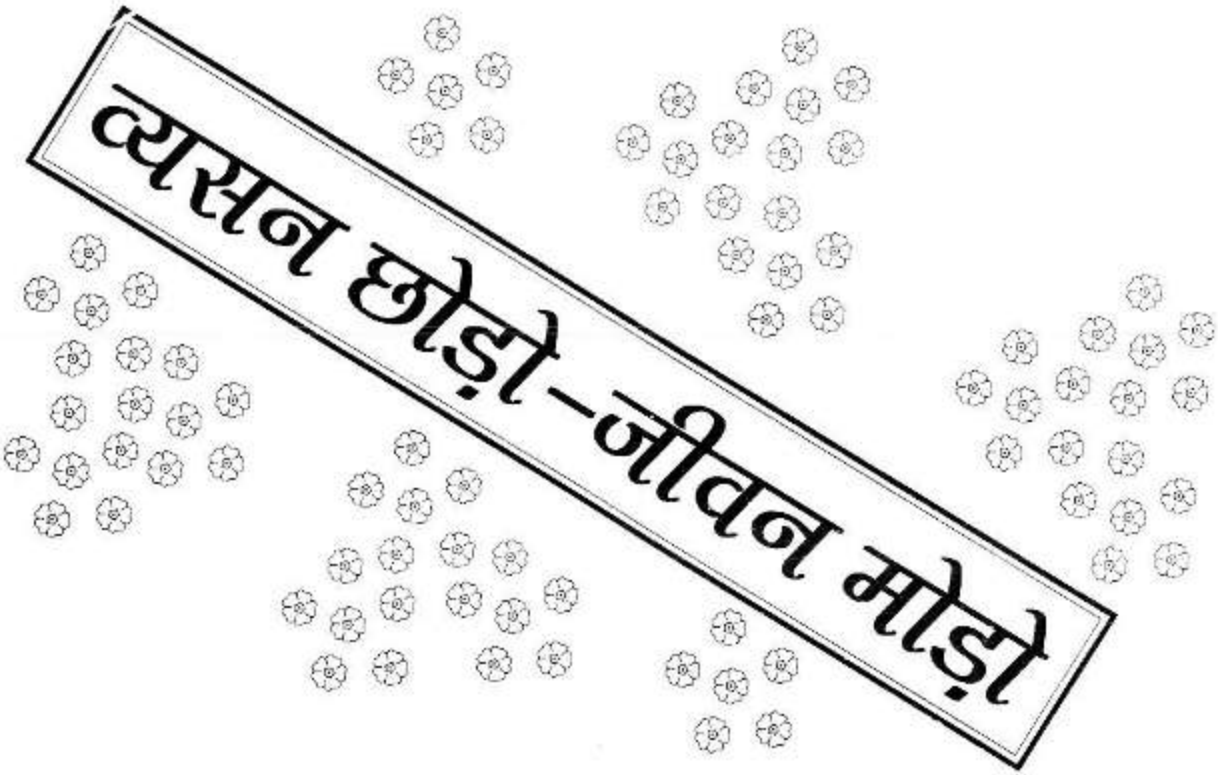
व्यसन छोड़ो-जीवन मोड़ो

१

व्यसन छोड़ो, सुख से जीयो

राष्ट्र की अमूल्य निधि

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीयों का उत्तरदायित्व अत्यधिक बढ़ गया है। देश के सामने अनेक विकट समस्याएँ हैं। उन सभी समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या है राष्ट्र की नैतिक , चारित्रिक दृष्टि से रक्षा करना। वही राष्ट्र की अमूल्य निधि है। राष्ट्र का सामूहिक विकास इसी आदर्शोन्मुखी उत्कर्ष पर निर्भर है। पवित्र चरित्र का निर्माण करना और उसकी सुरक्षा करना, सैनिक रक्षा से भी अधिक आवश्यक है। भौतिक रक्षा की अपेक्षा आध्यात्मिक परम्परा का रक्षण सार्वकालिक महत्त्व को लिए हुए है। आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समुन्नत राष्ट्र भी नैतिकता व चारित्रिक उत्कर्ष के अभाव में वास्तविक सुख-शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। अर्थमूलक उन्नति से वैयक्तिक जीवन को भौतिक समृद्धि की दृष्टि से समाज में भले ही उच्चतम स्थान प्राप्त हो; किन्तु जन-जीवन उन्नत-समुन्नत नहीं हो सकता।

भौतिक उन्नति से वास्तविक सुख-शान्ति नहीं

भारत में अतीतकाल से ही मानवता का शाश्वत मूल्य रहा है। समाजमूलक आध्यात्मिक परम्परा के प्रबुद्ध तत्त्व-चिन्तकों ने मानवों को वैराग्यमूलक त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रबल प्रेरणा दी जिससे

मानवता की लहलहाती लता विश्व मण्डप पर प्रसरित होकर राष्ट्रीय विमल विचारों के तथा पवित्र चरित्र के सुमन खिला सके और उन सुमनों की सुमधुर सौरभ जन-जीवन में ताजगी, स्फुरणा और अभिनव जागृति का संचार कर सके।

राजनैतिक श्रम से अर्जित स्वाधीनता की रक्षा धर्म, नीति, सभ्यता, संस्कृति और आत्मलक्ष्यी संस्कारों को जीवन में मूर्तरूप देने से ही हो सकती है। केवल नव-निर्माण के नाम पर विशाल बाँध, जल से पूरित सरोवर, लम्बे-चौड़े राजमार्ग और सभी सुख-सुविधा सम्पन्न भवनों का निर्माण करना अपर्याप्त है और न केवल यन्त्रवाद को प्रोत्साहन देना ही पर्याप्त है। जब तक जीवन व्यसनों के घुन से मुक्त नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का और जीवन का सच्चा व अच्छा निर्माण नहीं हो सकता। एतदर्थ ही गोर्वाण गिरा के एक यशस्वी कवि ने कहा है–

"मृत्यु और व्यसन इन दोनों में से व्यसन अधिक हानिप्रद है। क्योंकि मृत्यु एक बार ही कष्ट देती है, पर व्यसनी व्यक्ति जीवन भर कष्ट पाता है और मरने के पश्चात् भी वह नरक आदि में विभिन्न प्रकार के कष्टों का उपभोग करता है। जबकि अव्यसनी जीते जी भी यहाँ पर सुख के सागर पर तैरता है और मरने के पश्चात् स्वर्ग के रंगीन सुखों का उपभोग करता है।"[1]

व्यसन की परिभाषा

'व्यसन' शब्द संस्कृत भाषा का है जिसका तात्पर्य है 'कष्ट'। यहाँ हेतु में परिणाम का उपचार किया गया है। जिन प्रवृत्तियों का परिणाम कष्टकर हो, उन प्रवृत्तियों को व्यसन कहा गया है। व्यसन एक ऐसी आदत है जिसके बिना व्यक्ति रह नहीं सकता। व्यसनों की प्रवृत्ति अचानक नहीं होती। पहले व्यक्ति आकर्षण से करता है फिर उसे करने का मन होता है। एक ही कार्य को अनेक बार दोहराने पर वह व्यसन बन जाता है।

---

१. व्यसनस्य मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी नतः॥

व्यसन बिना बोये हुए ऐसे विष-वृक्ष हैं जो मानवीय गुणों के गौरव को रौरव में मिला देते हैं। ये विष-वृक्ष जिस जीवन भूमि पर पैदा होते हैं उसमें सदाचार के सुमन खिल ही नहीं सकते। मानव में ज्यों-ज्यों व्यसनों की अभिवृद्धि होती है, त्यों-त्यों उसमें सात्त्विकता नष्ट होने लगती है। जैसे अमरबेल अपने आश्रयदाता वृक्ष के सत्त्व को चूसकर उसे सुखा देती है, वैसे ही व्यसन अपने आश्रयदाता (व्यसनी) को नष्ट कर देते हैं। नदी में तेज बाढ़ आने से उसकी तेज धारा से किनारे नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही व्यसन जीवन के तटों को काट देते हैं। व्यसनी व्यक्तियों का जीवन नीरस हो जाता है, पारिवारिक जीवन संघर्षमय हो जाता है और सामाजिक जीवन में उसकी प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है।

व्यसनों की तुलना

व्यसनों की तुलना हम उस कर्दमयुक्त गहरे गर्त से कर सकते हैं जिसमें ऊपर हरियाली लहलहा रही हो, फूल खिल रहे हों, पर ज्यों ही व्यक्ति उस हरियाली और फूलों से आकर्षित होकर उन्हें प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता है त्यों ही वह दलदल में फँस जाता है। व्यसन भी इसी तरह व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अपने चित्ताकर्षक रूप से मुग्ध करते हैं, पर व्यक्ति के जीवन को दलदल में फँसा देते हैं। व्यसन व्यक्ति की बुद्धिमता, कुलीनता, सभी सद्गुणों को नष्ट करनेवाला है।

व्यसनों के अठारह प्रकार

यों तो व्यसनों की संख्या का कोई पार नहीं है। वैदिक ग्रन्थों में व्यसनों की संख्या अठारह बताई है।[१] उन अठारह में दस व्यसन कामज

---

१. दस कामसमुत्थानि तथाऽष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि यत्नेन परिवर्जयेत् ॥
मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाऽट्यां च कामजो दशको गणः ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्याऽसूयाऽर्थ दूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥

हैं और आठ व्यसन क्रोधज हैं। कामज व्यसन हैं— १. मृगया (शिकार), २. अक्ष (जुआ), ३. दिन का शयन, ४. परनिन्दा, ५. परस्त्री-सेवन, ६. मद, ७. नृत्य-सभा, ८. गीत-सभा, ९. वाद्य की महफिल, १०. व्यर्थ भटकना।

आठ क्रोधज व्यसन हैं—१. चुगली खाना, २. अति साहस करना, ३. द्रोह करना, ४. ईर्ष्या, ५. असूया, ६. अर्थ-दोष, ७. वाणी से दण्ड, और ८. कठोर वचन।

व्यसन के सात प्रकार

जैनाचार्यों ने व्यसन के मुख्य सात प्रकार[१] बताये हैं—१. जुआ, २. मांसाहार, ३. मद्यपान, ४. वेश्यागमन, ५. शिकार, ६. चोरी, ७. परस्त्री-गमन। इन सातों व्यसनों में अन्य जितने भी व्यसन हैं उन सभी का अन्तर्भाव हो जाता है।

आधुनिक युग में अश्लील चलचित्र, कामोत्तेजक, रोमांटिक और जासूसी साहित्य, बीड़ी-सिगरेट आदि भी व्यसनों की तरह ही हानिप्रद हैं।

ये व्यसन अन्धकूप के सदृश हैं जिसमें गिरकर मानव सभी प्रकार के पापकृत्य करता है। व्यसन प्रारम्भ में लघु प्रतीत होते हैं, किन्तु धीरे-धीरे हनुमान की पूँछ की तरह बढ़ते चले जाते हैं। आग की नन्हीं-सी चिनगारी घास के विशाल ढेर को नष्ट कर देती है। छोटी-सी ग्रन्थि कैंसर का भयंकर रूप ग्रहण कर लेती है। बिच्छू का जरा-सा डंक सारे शरीर को तिलमिला देता है, थोड़ा-सा विष प्राणों का अपहरण कर लेता है। वैसे ही थोड़ा-सा भी दुर्व्यसन जीवन की महान् प्रतिष्ठा को धूल में मिला देता है। अतः व्यसनों के सम्बन्ध में सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है।

१. जुआ

बिना परिश्रम के विराट् सम्पत्ति प्राप्त करने की तीव्र इच्छा ने जुआ या द्यूत-क्रीड़ा को जन्म दिया। जुआ एक ऐसा आकर्षण है जो भूत की

१. द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या पापर्द्धि चौर्यं परदारसेवा।
एतानि सप्तव्यसनानि लोके घोरातिघोरं नरकं नयन्ति ॥

तरह मानव के सत्त्व को चूस लेता है। जिसको यह लत लग जाती है वह मृग-मरीचिका की तरह धन-प्राप्ति की अभिलाषा से अधिक से अधिक धन बाजी पर लगाता चला जाता है और जब धन नष्ट हो जाता है तो वह चिन्ता के सागर में डुबकियाँ लगाने लगता है। उसके प्रति किसी का भी विश्वास नहीं रहता। भारत के सभी ऋषि और महर्षियों ने जुए की निन्दा की है। ऋग्वेद[1] मे भी द्यूत-क्रीड़ा को त्याज्य माना है। वहाँ द्यूत-क्रीड़ा को जीवन को बरवाद करने वाला दुर्गुण बताया गया है। जुआ एक प्रकार की खुजली है, जितना उसे खुजलाओगे उतनी ही वह बढ़ती जाएगी। यह एक छुआछूत की बीमारी है जो दूसरों को भी लग जाती है।

सूत्रकृतांग[2] में भी चौपड़ या शतरंज के रूप में जुआ खेलना मना किया है। क्योंकि हारा जुआरी दुगुना खेलता है। एक आचार्य ने ठीक ही कहा है[3] जहाँ पर आग की ज्वालाएँ धधक रही हों वहाँ पर पेड़-पौधे सुरक्षित नहीं रह सकते, वैसे ही जिसके अन्तर्मानस में जुए की प्रवृत्ति पनप रही हो, उसके पास लक्ष्मी रह नहीं सकती। एक पाश्चात्य चिन्तक[4] ने भी लिखा है—जुआ लोभ का बच्चा है पर फिजूलखर्ची का माता-पिता है।

जुआ : असाध्य रोग

अतीतकाल में जुआ चौपड़, पासा या शतरंज के रूप में खेला जाता था। महाभारतकाल में चौपड़ का अधिक प्रचलन था तो मुगलकाल में शतरंज का। अंग्रेजी शासनकाल में ताश के रूप में और उसके पश्चात् सट्टा, फीचर, लाटरी, मटका आदि विविध रूपों में जुए का प्रचलन प्रारंभ हुआ। 'रेस' आदि का व्यसन भी जुआ ही है। एतदर्थ ही गौतम कुलक[5]

---

१. अक्षैर्मा दिव्यः। —ऋग्वेद १०/३४/१३

२. अट्ठाए न सिक्खेज्जा। —सूत्रकृतांग ६/१०

३. श्रियस्तत्र न तिष्ठिन्ति यत्र द्यूतं प्रवर्तते।
न वृक्षजातयस्तत्र विद्यते यत्र पावकाः ॥

४. Gambling is the child of avarice, but the parent of prodigality.

५. जुएं पसत्तस्स धणस्स नासो।

में कहा है—"जुए में आसक्त व्यक्ति धन का नाश करता है।" एच. डब्ल्यू. बीचर[1] का अभिमत है कि "जुआ चाहे वह ताश के पत्तों के रूप में खेला जाता हो, या घुड़दौड़ अथवा द्वन्द्व-युद्ध या सट्टे के रूप में, सबमें एक ही बात है कि उसमें बिना परिश्रम आदि किये धन प्राप्त करने की इच्छा निहित है। श्रम के बिना जो धन प्राप्त होता है वह बरसाती नदी की तरह आता है और वह नदी के मूल पानी को भी ले जाता है।"

जुआरी के अन्तर्मानस में कभी भी शान्ति नहीं होती। वह रात-दिन चिन्ता में घुलता रहता है। यदि धन प्राप्त हो गया तो वह दुगुना जुआ खेलता है और नहीं प्राप्त हुआ तो प्राप्त करने के लिए चिंतित रहता है। इस प्रकार उसके जीवन में शांति का अभाव होता है। जुआरी की केवल जेब ही खाली नहीं होती, उसकी बुद्धि भी खाली हो जाती है। उसमें चिन्तन करने की शक्ति ही नहीं रहती। एक पाश्चात्य चिन्तक ने लिखा है—जुआ एक ऐसा असाध्य रोग है जो पुनः-पुनः आक्रमण करता है। मानसिक संक्लेश में रात-दिन निमग्न रहने पर भी व्यक्ति उसे छोड़ नहीं सकता। जुआ एक ऐसी आवेशात्मक आँधी है जिसमें कुछ भी नहीं सूझता। वह ध्वंस ही करती है, निर्माण नहीं।

जुआरी अन्य व्यसनों को भी अपनाता है

जुआरी किसी के भी तर्क को सुनना पसन्द नहीं करता। वह हारने पर भी जीतने का पाखण्ड करता है। झूठी कसमें खाता है और झूठे वायदे कर दूसरों के साथ वंचना करता है। जुआरी का पारिवारिक जीवन सदा अशान्तिमय होता है। महासती दमयन्ती को राजा नल के द्यूत-प्रेम के कारण ही एक जंगल से दूसरे जंगल में भटकना पड़ा। पाण्डवों के द्यूत-व्यसन के कारण ही द्रौपदी जैसी महासती की भी भरी सभा में चीर-हरण की निन्दनीय घटना हुई। जुए के कारण ही हजारों घर बरबाद हो गये। जुआरी में एक व्यसन के साथ ही अन्य व्यसन भी धीरे-धीरे स्वयं ही आ जाते हैं। प्राचीन युग में तो राजा, महाराजा व धनाढ्य लोग ही

१. Gambling with cards, or dice or strokes in all one thing, it is getting money without giving an equivalent for it.

जुआ खेलते थे। यदि कोई उन्हें जुआ खेलने के लिए आह्वान कर देता तो वे सर्वस्व न्योछावर करके भी जुआ खेलना पसन्द करते। "आहूतो न निवर्तेत।" आह्वान करने पर उसे ठुकराना नहीं चाहिए, यह उनकी मिथ्या धारणा थी। पर आज जुआ उच्च पदाधिकारियों से लेकर गरीब से गरीब व्यक्ति भी खेलने लगा है। आचार्य वसुनन्दि ने कहा है—अग्नि, विष, चोर और सर्प अल्प कष्ट देते हैं, पर जुआ हजारों-लाखों जन्मों में भी कष्ट देता है।[1] इसलिए सभी चिन्तकों ने जुए के व्यसन से मुक्त हो जाने का सन्देश दिया है।

(२) मांसाहार

जुए के समान मांसाहार भी एक व्यसन है। मांसाहार मानव प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। वह किसी भी स्थिति में मानव के लिए उपयुक्त नहीं है। मांसभक्षी पशुओं के शरीर की रचना और मानव-शरीर की रचना बिलकुल भिन्न है। आधुनिक शरीरशास्त्रियों का भी स्पष्ट अभिमत है कि मानव का शरीर मांसभक्षण के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। मानव में जो मांस खाने की प्रवृत्ति है, वह उसका नैसर्गिक रूप नहीं है, किन्तु विकृत रूप है। प्राचीन आर्य मनीषी तो मांस को स्पष्ट त्याज्य बताते ही हैं। महाभारतकार कहते हैं—मांसाहार प्राणिजन्य होने के कारण ताज्य है, क्योंकि मांस न पेड़ पर लगता है और न जीवन में पैदा होता है।[2] आचार्य मनु[3] ने कहा—जीवों की हिंसा के बिना मांस उपलब्ध नहीं होता और जीवों

---

१. अग्गि-विस-चोर-सप्पा दुक्खं थावं कुर्वंति इह लोए।
दुक्खं जणेइ जूयं णरस्स भवसयसहस्सेसु ॥
पावेण तेण जर मरण वीचि पउरम्मि दुक्खसलिलम्मि।
चउगइ गमणावत्तम्मि हिंडइ भवसमुद्दम्मि ॥ —वसुनन्दी श्रावकाचार

२. महाभारत—अनुशासनपर्व १९५/२४

३. नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसा, मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्गस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥
समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥४९॥ मनुस्मृति, अ. ५

का वध कभी स्वर्ग प्रदान नहीं करता; अतः मांसभक्षण त्यागना चाहिए।

हिंसा से पापकर्म का अनुबन्ध होता है। इसलिए उसे स्वर्ग तो मिल ही नहीं सकता। या तो उसे इसी जन्म में उसका फल प्राप्त होता है अथवा अगले जन्म में नरक और तिर्यंच गति के भयंकर कष्ट सहन करने पड़ते हैं। आचार्य हेमचन्द्र[1] ने स्पष्ट रूप से कहा—पंगुपन, कोढ़ीपन, लूला आदि हिंसा के ही फल हैं। स्थानांग[2] में मांसाहार करने वाले को नरकगामी बताया है। आचार्य मनु[3] ने कहा—मांस का अर्थ ही है, जिसका मैं मांस खा रहा हूँ वह अगले जन्म में मुझे खाएगा। मांस शब्द को पृथक्-पृथक् लिखने से "मां" और "स" यानी मुझे खाएगा। इस प्रकार मांस का अर्थ मनीषियों ने प्रतिपादित किया है। कबीरदास[4] ने भी मांसाहार को अनुचित माना है और मांसाहार करने वाले को नरकगामी कहा है।

मांसाहार और पाप

विपाकसूत्र[5] के प्रथम श्रुतस्कन्ध में मांसाहार करने वालों के जीवन किस प्रकार कष्टमय होते हैं, उसका शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है।

कुछ सज्जन यह कुतर्क देते हैं कि हम स्वयं पशुओं को नहीं मारते हैं किन्तु हम तो बाजार से खरीदकर मांस लाकर खाते हैं, इसलिए हमें पाप नहीं लगता। किन्तु आचार्य मनु[6] ने कहा है—"जो मांसाहार का अनुमोदन करता है, मृत पशुओं के अंगों का छेदन-भेदन करता है, मारने

---

१. पंगु-कुटि-कुणित्वादि दृष्ट्वा हिंसाफलं सुधीः।
निरागस्त्रसजन्तूनां हिंसा संकल्पतस्त्यजेत् ॥ —योगशास्त्र २-१९

२. चउहिं ठाणेहिं जीवा नेरइयत्ताए, कम्मं पकरेंति, तं जहा-महारंभयाते, महापरिग्गहयाते, पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेण ॥

३. मां स भक्षयिताऽमुत्र, यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्व-प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ —मनुस्मृति ५५५

४. मांस मछरिया खात है, सुरापान से हेत।
वे नर नरकहिं जाएँगे, माता-पिता समेत ॥

५. विपाकसूत्र श्रुतस्कन्ध १. अ. ६

६. अनुमन्ता, विशसिता निहन्ता, क्रय-विक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ —मनुस्मृति अ. ५

वाला मांस आदि खरीदने वाला, बेचने वाला, मांस पकाने वाला, मांस परोसने वाला और मांस खाने वाला—ये सभी घातक हैं। वे सभी प्राणविध के भागी हैं।" यदि मांसाहारी न हों तो मूक जीवों की हिंसा कौन करेगा? मांसाहारी मानवों ने ही परमात्मा या देवी-देवताओं के नाम पर हिंसाएँ प्रारम्भ कीं। पर उन्हें सोचना चाहिए जैसे हमें अपना जीवन प्यारा है वैसे ही अन्य प्राणियों को भी प्यारा है।

एक बार वैज्ञानिकों का सम्मेलन लन्दन में हुआ। सम्मेलन में एक वैज्ञानिक ने यह प्रस्ताव रखा कि जिस प्राणी को हम बना नहीं सकते उसे तोड़ने या बिगाड़ने का हमें अधिकार नहीं है। इस पर अन्य वैज्ञानिकों ने अपने तर्क प्रस्तुत किये। उत्तर में उस वैज्ञानिक ने कहा—आप एक मक्खी पर प्रयोग कर देखिए। सभी के सामने एक मक्खी की पाँख काट दी गई जिससे वह मक्खी उड़ न सकी। वैज्ञानिकों ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया और नकली पाँख मक्खी को चिपका दिया गया, तथापि अनेक प्रयास करने पर भी वह उड़ न सकी। अतः सभी ने एक स्वर से प्रस्ताव पारित किया कि जब हमारे अन्दर में किसी प्राणी को बनाने की शक्ति नहीं है तो उसे बिगाड़ने या मारने का अधिकार भी नहीं है। ऐसा करने पर हम स्वतः अपराधी बनते हैं।

शाकाहार और मांसाहार

कुछ लोग यह समझते हैं कि मांस से शरीर में शक्ति का संचार होगा, वे भ्रम में हैं। सत्य तो यह है कि मांस खाने से शक्ति का संचार नहीं होता। प्रारम्भ में कुछ जोश-सा प्रतीत होता है किन्तु वह क्षणिक जोश ही होता है, उसमें शक्ति का अभाव होता है। शाकाहार से जितनी शक्ति प्राप्त होती है उतनी मांसाकार से कभी नहीं हो सकती।

सन् १९३२ में 'लीग ऑफ नेशन्स' की कॉन्फरेन्स हुई। उसमें अनुसंधान कर यह निर्णय लिया गया कि सैनिकों के लिए मांस आवश्यक नहीं है। इसके अभाव में भी शाकाहार से सैनिकों में शक्ति और स्फूर्ति आ सकती है और वे बुद्धिमान, चतुर और फुर्तीले हो सकते हैं। डॉ. ग्राहम ने अपने अभिभाषण में कहा—जब से रोमन सिपाहियों के भोजन में मांस

का प्रवेश हुआ तब से रोमन साम्राज्य का ह्रास प्रारम्भ हो गया और अन्त में वह विनष्ट हो गया।

शक्ति का मूल : शाकाहार

महान् दार्शनिक राल्फ वाल्डी इमरसन शाकाहारी था। एक दिन एक किसान ने उससे कहा—"आप मांसाहार का विरोध करते हैं। यह सर्वथा अनुचित है। यदि हम मांसाहार करना बन्द कर देंगे तो अवश्य ही अमेरिका कमजोर हो जाएगा। क्योंकि शाकाहार में मांसाहार की तरह हड्डियों को मजबूत करने की शक्ति नहीं है। इसलिए आप शाकाहार के प्रचार को बन्द कर दीजिए।"

इमरसन ने मुस्कराते हुए कहा—"आपकी हड्डियाँ तो बहुत मजबूत होंगी। आप अच्छी तरह से हल चला सकते हैं।" किसान ने कहा—"यह कैसे सम्भव है?" इमरसन ने कहा—"तुम्हें पता है बैल की हड्डियाँ आदमी की अपेक्षा अधिक मजबूत हैं इसका कारण यह है कि वह केवल घास खाता है। वह तो मांस को छूता भी नहीं है।"

उस किसान को वह बात जँच गई। उसने उसी दिन मांसाहार छोड़ दिया, नियमित जीवन से उसमें इतनी शक्ति पैदा हुई कि उसने ४६ प्रतियोगिताओं में विजय प्राप्त की। विश्व चैम्पियन बना।

रसायनशास्त्रियों के अभिमतानुसार शरीर को पुष्टि के लिए वनस्पतिजनक खाद्य पदार्थ ही अधिक उपयोगी हैं। डॉ. हेग ने लिखा है—शाकाहार से शक्ति समुत्पन्न होती है जबकि मांसाहार से उत्तेजना प्राप्त होती है। मांसाहारी प्रथम शक्ति का अनुभव करता है पर वह शीघ्र ही थक जाता है। किन्तु शाकाहारी की शक्ति और धैर्य स्थायी होता है।

आधुनिक युग में अनेक प्रतियोगिताओं में शाकाहारियों की विजय हुई है।

मांसाहार अपवित्र

मांसाहार अपवित्र है। जो लोग मांस का उपयोग करते हैं वे भी मसजिद, चर्च, गुरुद्वारा, मन्दिर में मांसाहार नहीं करते हैं और वहाँ मांस

खाना तो दूर रहा, मांस लाना भी अपराध माना गया है। इसीलिए आचार्य वसुनन्दी[1] ने तो मांस को विष्टा के समान गन्दा, छोटे-छोटे कीड़ों से युक्त दुर्गन्ध वाला माना है।

मांसाहार से हानि

यू.एस.ए. के कोलगेट यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक ल्यार्ड ने लिखा है—मांसाहार में कैल्सियम और कार्बोहाईड्रेट्स नहीं होते, एतदर्थ मांस खाने वाले चिड़चिड़े, क्रोधी, निराशावादी और असहिष्णु होते हैं। शाकाहार में ये दोनों तत्त्व अधिक मात्रा में होते हैं जिससे शाकाहारी प्रसन्नचित्त, शान्तिप्रिय, आशावादी और कष्टसहिष्णु होते हैं। हेनरी ब्लेकबर्न ने लिखा है—इन अरबों का मुकाबला फुर्ती, सहनशक्ति, वीरता आदि में बहुत ही कम लोग कर सकते हैं, क्योंकि उनका गुजारा दूध और खजूर पर है।

डॉ. हेग का मन्तव्य है—मांस और शराब के सेवन से मानव के स्नायु इतने अधिक कमजोर हो जाते हैं कि वह जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने को भी उतारू हो जाता है।

सभी धर्म-प्रवर्तकों ने नैतिक दृष्टि से मांसाहार को निन्दनीय और हिंसाजनक माना है। मांसाहार करने वाले को जघन्य दृष्टि से देखा है। सामाजिक, नैतिक, धार्मिक व स्वास्थ्य की दृष्टि से भी मांसाहार हानिप्रद है। आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, आर्थिक दृष्टि से भी मांसाहार अनुपयुक्त है। मांसाहार घोर तामसिक आहार है जो जीवन में अनेक विकृतियाँ पैदा करता है। इसीलिए मांसाहार की परिगणना व्यसनों में की गई है।

(३) मद्यपान

जितने भी पेय, पदार्थ, जिनमें मादकता है, विवेक-बुद्धि को नष्ट करने वाले हैं या विवेक-बुद्धि पर परदा डाल देते हैं[2] वे सभी 'मद्य'

---

१. मंसं अमज्जासरिसं किमिकुलभरियं दुगन्ध बीभच्छं।
पाएण छिवेउं जं ण तीरए तं कहं भोत्तं॥ —वसुनन्दी श्रावकाचार ८२

२. बुद्धिं लुम्पति यद : द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।

अन्तर्गत आ जाते हैं। मदिरा एक प्रकार से नशा लाती है। इसलिए भाँग, गाँजा, चरस, अफीम, चुरुट, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू, ताड़ी, विस्की, ब्रांडी, शेम्पेइन, जिन, रम, पोर्ट, बियर देशी और विदेशी मद्य हैं, वे सभी मदिरापान में ही आते हैं। मदिरादान ऐसा तीक्ष्ण तीर है कि जिस किसी को लग जाता है उसका वह सर्वस्व नष्ट कर देता है। मदिरा की एक-एक बूँद जहर की बूँद के सदृश्य है। मानव प्रारम्भ में चिन्ता को कम करने के लिए मदिरापान करता है पर धीरे-धीरे वह स्वयं ही समाप्त हो जाता है। शराब का शौक बिजली का शॉक है। जिसे तन से, धन से और जीवन के आनन्द से बरबाद होना हो उसके लिए मदिरा की एक बोतल ही पर्याप्त है। मदिरा की प्रथम घूँट मानव को मूर्ख बनाता है, द्वितीय घूँट पागल बनाता है, तृतीय घूँट से वह दानव की तरह कार्य करने लगता है और चौथे घूँट से वह मुर्दे की तरह भूमि पर लुढ़क पड़ता है। आज तक विराट्काय समुद्र ने भी जितने मानवों को नहीं निगला है, उतने मानव मदिरा ने निगल दिये हैं। मदिरापान से नकली प्रसन्नता प्राप्त होती है और वह असली उदासी से भी खराब है।

मदिरालय : दिवालिया बैंक

एक पाश्चात्य चिन्तक ने मदिरालय की तुलना दिवालिया बैंक से की है। मदिरालय एक ऐसे दिवालिया बैंक के सदृश है जहाँ तुम अपना धन जमा करा देते हो और खो देते हो। तुम्हारा समय, तुम्हारा चरित्र भी नष्ट हो जाता है। तुम्हारी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। तुम्हारे घर का आनन्द समाप्त हो जाता है। साथ ही अपनी आत्मा का भी सर्वनाश कर देते हो।[1]

मदिरा एक ऐसा पदार्थ है जो किसी भी दृष्टि से पेय नहीं है। वह सड़ा हुआ पदार्थ है। शर्करायुक्त पदार्थ, जैसे—अंगूर, महुआ, जौ, गेहूँ,

1. The Bar-room as a bankrupt bank, you deposit your money and lose it: your time and lose it: your character and lose it: your manly independence and lose it: your home comfort and lose it: your self-control and lose it: your children's happiness and lose it: your own soul and lose it.

मक्का, गुड़ आदि वस्तुओं को सड़ाकर निर्माण किया जाता है। मदिरा का सत्त्व 'अल्कोहल' तथा सड़ा हुआ पदार्थ 'वाइन' कहलाता है। उसे भट्टी में उबालने से 'स्पिरिट' की तरह तेज मदिरा बनती है। मदिरा को ही शराब कहते हैं जो वस्तुतः सड़ाव = सड़ा हुआ पानी है। शराब का साड़ खमीर पैदा करने के लिए उपयोग में लिया जाता है जिसमें अत्यन्त दुर्गन्ध आती है। उस साड़ में बारीक कीड़े कुलबुलाते रहते हैं और उन कीड़ों का अर्क मदिरा है। एतदर्थ ही आचार्य मनु[1] ने कहा—मदिरा किसी मानव के पीने योग्य नहीं है।

मदिरा पोषक नहीं, शोषक

शरीर को टिकाने के लिए आहार की आवश्यकता है। किन्तु मदिरा में ऐसा कोई पोषक तत्त्व नहीं है जो शरीर के लिए आवश्यक हो। अपितु उसमें सड़ाने से ऐसे जहरीले तत्त्व प्रविष्ट हो जाते हैं जिनसे शरीर पर घातक प्रभाव पड़ता है। मदिरा में अल्कोहल होता है। वह इतना तेज होता है कि सौ बूँद पानी में एक बूँद अल्कोहल मिला हो और उसमें एक छोटा-सा कीड़ा गिर जाए तो शीघ्र ही मर जाता है।

डॉ. सफेनकी का अभिमत है कि मानव के रक्त की हजार बूँदों में मदिरा की दो बूँदे मिलते ही उसकी बोली बन्द होने लगती है। यदि हजार बूँदों में केवल छह बूँद अल्कोहल की हों तो आदमी मर जाता है। बैजनाथ का अभिमत है—मदिरा की एक घूँट मुँह में लेकर कुछ समय तक रखते ही उस व्यक्ति की जीभ और मुँह चरचराने लगेंगे और मुँह का सारा भीतरी हिस्सा सफेद हो जाएगा। उसके पश्चात् कोई भी पदार्थ खाने पर उसके स्वाद का किंचित् भी पता न लगेगा।

मदिरा टॉनिक नहीं

कितने ही लोगों की यह भ्रान्त धारणा है कि मदिरा एक टॉनिक है जो शारीरिक थकान को दूर करती है। सुस्ती मिटाकर शरीर में चुस्ती पैदा

१. सुरा वै मलमन्नानां, पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मण-राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ —मनुस्मृति, अ. ११/९३

करती है। इस प्रकार के मिथ्या विज्ञापन से लोगों को मदिरा पीने के लिए प्रेरणा दी जाती है। किन्तु वस्तुतः मदिरा पीने वालों में, प्रारम्भ में जोश आता है, पर वे बहुत ही शीघ्र थक जाते हैं। उनकी शारीरिक शक्ति नष्ट हो जाती है। क्योंकि मदिरा चाहे किसी भी किस्म की हो उसमें किसी भी प्रकार का पोषक पदार्थ नहीं है। वेरन लिबिंग का मानना है कि बियर, वाइन या अन्य मदिरा शरीर में जाकर रक्त का रूप ग्रहण नहीं कर सकते, स्नायुओं को किसी भी प्रकार का सहारा नहीं दे सकते।

मदिरा से उत्तेजना

कितने ही व्यक्तियों का यह मन्तव्य है कि भोजन से पूर्व मदिरा का पान कर लिया जाये तो भूख मिट जाती है। पर सत्य तथ्य यह है कि मदिरापान से पेट की ज्ञानवाही और क्रियावाही नाड़ियाँ निश्चेष्टित हो जाती हैं जिसके कारण उसे भूख का भान नहीं रहता। लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। मदिरा-सेवन करने वाले का पाचन संस्थान विकृत हो जाता है। मदिरा से शरीर पुष्ट नहीं होता। किन्तु शरीर में ऊष्मा बढ़ जाती है। आहार का शरीर में पाचन होता है, पर मदिरा का पाचन नहीं होता, वह ज्यों की त्यों निकल जाती है। आहार से रक्त शुद्ध होता है और मदिरा से विकृत होता है। मदिरापान से क्षणिक उत्तेजना होती है। जैसे कोई व्यक्ति चल रहा हो और उसे यह ज्ञान हो कि पीछे से पागल कुत्ता दौड़ा हुआ आ रहा है तो वह दौड़ने लगेगा। पर उसका दौड़ना क्षणिक उत्तेजनायुक्त होगा। जब उसे ज्ञात हो जाएगा कि कुत्ता इधर नहीं आ रहा है तो वह स्थिर हो जाएगा। वैसे नशीले पदार्थों के सेवन से उत्तेजना आती पर ज्यों ही नशा कम होता है त्यों ही उसके समस्त अंगोपांग शिथिल हो जाते हैं।

मदिरापान सन्निपात के समान

भल्लट नामक विद्वान् ने मदिरापान करने वाले की तुलना सन्निपात से ग्रसित व्यक्ति से की है। जैसे उसमें विकलता होती है, वह भूमि पर लुढ़क पड़ता है, अनुचित बोलता है, सन्निपात के सभी लक्षण

मदिरापान करने वाले में पाये जाते हैं।[1]

मदिरा के नशे में व्यक्ति की दशा पागल व्यक्ति की तरह होती है। वह पागल की तरह हँसता है, गाता है, बोलता है, नाचता है, घूमता है, दौड़ता है और मूर्च्छित हो जाता है। कभी वह विलाप करता है, कभी रोता है, कभी अस्पष्ट गुनगुनाने लगता है, कभी चीखता है, कभी मस्तक धुनने लगता है। इस तरह शताधिक क्रियाएँ वह पागलों की तरह करने लगता है।[2] इसीलिए कहा है—मद्यपान से मानवों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। एक पाश्चात्य चिन्तक ने भी लिखा है—जब मानव में मद्यपान का दुर्व्यसन प्रविष्ट होता है तो उसकी बुद्धि उससे विदा ले लेती है।[3]

मदिरा के दोष

आचार्य हरिभद्र[4] ने मद्यपान करने वाले व्यक्ति में सोलह दोषों का उल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं—(१) शरीर विद्रूप होना, (२) शरीर विविध रोगों का आश्रयस्थल होना, (३) परिवार से तिरस्कृत होना, (४) समय पर कार्य करने की क्षमता का न रहना, (५) अन्तर्मानस में द्वेष पैदा होना, (६) ज्ञानतन्तुओं का धुँधला हो जाना, (७) स्मृति का लोप हो जाना, (८) बुद्धि भ्रष्ट होना, (९) सज्जनों से सम्पर्क समाप्त हो जाना, (१०) वाणी में कठोरता आना, (११) नीच कुलोत्पन्न व्यक्तियों से सम्पर्क, (१२) कुलहीनता, (१३) शक्ति ह्रास, (१४) धर्म, (१५) अर्थ, (१६) काम—तीनों का नाश होना।

महाकवि कालिदास ने एक मदिरा बेचने वाले से पूछा—तुम्हारे पात्र में क्या है? मदिरा बेचने वाला महान् दार्शनिक था। उसने दार्शनिक शब्दावली में कहा—

---

१. वैकल्यं धरणीपातमयथोचितजल्पनन्।
सन्निपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत ॥

२. हसति, नृत्यति, गायति, बल्गति, भ्रमति, धावति, मूर्च्छति, शोचते।
पतति, रोदिति, जल्पति गद्गदं, धमनि धाम्यति, मद्यमवातुरः ॥

3. When drink enters, wisdom departs.

४. हरिभद्रीय अष्टक १४-१५-१६

कविवर! मेरे प्रस्तुत पात्र में आठ दुर्गुण हैं—(१) मस्ती, (२) पागलपन, (३) कलह, (४) धृष्टता, (५) बुद्धि का नाश, (६) सच्चाई और योग्यता से नफरत, (७) खुशी का नाश, और (८) नरक का मार्ग।

एक मनोवैज्ञानिक ने बताया कि मदिरापान से असन्तुष्ट व्यक्ति सुख प्राप्त करने का प्रयास करता है, निरुत्साही व्यक्ति साहस, दुलमुल मनोवृत्ति वाला आत्म-विश्वास और इसी तरह उदास-व्यक्ति सुख की खोज करता है; किन्तु सभी को मिलता है, इसके विपरीत। उनका सब कुछ नष्ट हो जाता है।[1]

जितने भी दुर्गुण हैं वे मदिरापान से अपने आप चले आते हैं। ऐसा कोई दुर्गुण और अपराध नहीं है जो मदिरापान से उत्पन्न न होता हो।[2]

महात्मा गाँधी ने कहा—मैं मदिरापान को तस्कर कृत्य और वेश्यावृत्ति से भी अधिक निन्दनीय मानता हूँ; क्योंकि इन दोनों कुकृत्यों को पैदा करने वाला मद्यपान है।

मदिरापान और शुद्धि

मदिरा के सेवन से स्वास्थ्य चौपट होता है। मन, मस्तिष्क और बुद्धि का विनाश होता है। मदिरापान से उन्मत्त होकर मानव निन्दनीय कार्यों को करता है जिससे उसका वर्तमान लोक और परलोक दोनों ही विकृत हो जाते हैं। आचार्य मनु[3] ने मदिरा को अन्न का मल कहा है। मल को पाप भी कहा है। मल-मूत्र जैसे अभक्ष्य पदार्थ हैं, खाने-पीने के लिये अयोग्य हैं, वैसे ही मदिरा भी है। व्यास ने[4] कहा है—मदिरा का जो मानव सेवन करता है वह पापी है। यदि वह पाप से मुक्त होना चाहता है तो

---

१. "In the bottle, discontent seeks for comfort, cowardice for courage, bashful for confidence, sad for joy and all find ruin,"

२. Habitual intoxication is the epitome of every crime. —*Gerrold*

३. सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मण राज्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥ —मनुस्मृति ११/९३

४. महाभारत, शान्तिपूर्व, १६४/४७-४८
द्रष्टव्य-याज्ञवल्क्य स्मृति, प्रायश्चिताध्याय १६५/४७-४८

मदिरा को तेज गरम करके पिये जिससे उसका सारा शरीर जलकर नष्ट हो जाएगा।

ब्राह्मण के लिए यह निर्देश है[1] कि यदि ब्राह्मण मदिरापान करने वाले व्यक्ति की गन्ध ले ले तो उसे शुद्ध होने के लिए तीन दिन तक गरम जल पीना चाहिए, उसके बाद तीन दिन गरम दूध का सेवन करे और उसके बाद तीन दिन तक केवल वायु सेवन करे, तब वह शुद्ध होगा।

बौद्ध साहित्य में

बौद्ध जातकों[2] में मदिरा को विषैले सर्प के सदृश माना है। जैसे विषैले सर्प से लोग दूर भागते हैं वैसे ही मदिरा से दूर भागना चाहिए। सुरापान के दुष्परिणाम के बारे में जातक[3] में वर्णन है कि कुछ बौद्ध श्रमण जहाँ मदिरापान चल रहा था वहाँ पर पहुँच गये। उन्होंने मदिरा को ग्रहण कर लिया जिसके फलस्वरूप वे उन्मत्त होकर नाचने लगे। श्रमणचर्या को विस्मृत हो गये। जब उन्हें होश आया तब वे मन ही मन में अत्यन्त व्यथित हुए—अरे, हमने यह अनुकूल नहीं किया। वे दुःखी होकर रोने लगे।[4]

सुरापान प्रत्येक दृष्टि से निन्दनीय है। कुम्भ जातक में उल्लेख है—देवराज इन्द्र[5] ने मदिरा के घड़े को हाथ में लिया और घड़े का परिचय देते हुए कहा—इसमें वह अद्भुत वस्तु है जिसको पीने के पश्चात् पैर लड़खड़ाते हैं, गड्ढे में, तालाब में और गन्दे स्थान पर गिरने पर भी मन में आह्लाद का अनुभव किया जाय जिसके कारण अनेक अभक्ष्य पदार्थ खाये जायें, उस पेय का नाम है मदिरा। तुम इसे ग्रहण करो। इसका पान

---

१. महाभारत, शान्ति पर्व १६५/७६-७७

२. जातक, पंचम खण्ड, गा. ५६, पृ. १०७

३. वही, प्रथम खण्ड, पृ. ४७१

४. वही, प्रथम खण्ड, पृ. ४७१

५. गलेय्ये यं पीत्वा पते पपातं सोब्भं गुहं चन्दनियोलिगल्लं।
बहुंपि भुंजेय्य अभीजयेय्यं तस्सा पुण्ण कुम्भमिम किणाथ ॥

जातक, पंचम खण्ड, गा. ३७, पृ. १०२

कर मानव धधकती हुई ज्वाला में गिर पड़ते हैं। इस प्रकार वे बेमौत मरते हैं। शृगाल उसे चीरकर खा लेते हैं। सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। अतः इसे ग्रहण करो।

इससे स्पष्ट है कि मदिरा सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त बनाने वाली है। बौद्ध जातक से यह भी ज्ञात होता है कि बुद्ध-युग में मदिरापान का सामूहिक प्रचार था। एक बार बुद्ध संघ की प्रमुख श्राविका विशाखा की पाँच सौ सखियों[1] ने मदिरा का पान किया। विशाखा उन सभी सखियों के साथ तथागत के दर्शन करने पहुँची। मदिरा से उन्मत्त बनी हुई सखियाँ कुछ नाचने लगीं, परस्पर झगड़ने लगीं, अभद्र व्यवहार करने लगीं। जिससे विशाखा का सिर लज्जा से नत हो गया।

जातक में यह भी लिखा है—जो मदिरापान करते हैं उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। वे गलियों में घूमने वाले बैल की भाँति इधर-उधर कुछ भी खाते फिरते हैं। अनियन्त्रित होकर नाचते-गाते हैं। निर्वस्त्र होकर ग्राम और गलियों में भटकते फिरते हैं और मूढ़ होकर अति आलसी बन जाते हैं।[2]

आधुनिक सभ्य कहलाने वाले जब मदिरा का पान करते हैं तो वे पागल बनकर एक-दूसरे के साथ जैसा अमानवीय व्यवहार करते हैं उसे देखकर किसे खिन्नता नहीं होती? कुम्भ जातक[3] में बताया है कि हजारों व्यक्ति, जिनके पास सम्पत्तियाँ अठखेलियाँ कर रही थीं, वे भी मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर दरिद्र बन गये। वे बरबाद हो गये। जो व्यक्ति कैसी भी परिस्थिति हो धर्म से विमुख नहीं हो सकता, कर्त्तव्य से च्युत नहीं हो सकता, नीति का परित्याग नहीं कर सकता; यदि उस व्यक्ति को मदिरा पिला दी जाय तो वह धर्म का भी परित्याग कर देता है कर्त्तव्य को भी विस्मृत हो जाता है और नीति को भी छोड़ देता है। ऐसा कौन-सा अकार्य है जिसे मदिरा पीने वाला न करे।[4]

१. जातक, पंचम खण्ड, पृ. ८८
२. जातक, पंचम खण्ड, गा. ३६ पृ. १०३
३. कुम्भ जातक, जातक, पंचम खण्ड, गा. ४५ पृ. १०४
४. वही, गा. ५६. पृ. १०६

मदिरा न पियो

मदिरापान एक भीषण दुर्व्यसन है। मानव सोचता है कि इसमें रस है इसलिए वह उसका पान करता है पर वह ऐसा रस है कि जीवन के समग्र रस को निचोड़ लेता है। इसलिए भ. महावीर ने कहा—"उसे न पीओ।"[1] तथागत बुद्ध ने पंचशील में 'मज्जं न पायब्ब' मद्यपान न करो—यह सन्देश दिया है। ऋग्वेद के ऋषि ने कहा—मदिरा पीने वाला पानी बन जाता है। इस्लाम धर्म के पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने कहा है—"अल्लाह ने शराब पर, शराब पीने वालों पर, पिलाने वाले और किसी तरह उसमें सहयोग देने वालों पर लानत फरमाई है।" महात्मा गाँधी ने अपने रचनात्मक कार्यों की सूची में नशाबन्दी को भी रखा था।

मदिरापान : महान् पाप

डॉ. हार्वर्ड ने लिखा है—"यह अत्यन्त मिथ्या धारणा है कि शराब औषध है और उससे शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है। वस्तुतः शराब किसी रोग की दवा नहीं है, चिकित्सा में उसका कोई स्थान नहीं है।" शेक्सपीयर ने लिखा है—"मद्य का एक प्याला बुद्धिहीन, दूसरा प्याला पागल और तीसरा प्याला मूर्च्छित कर देता है।" सेनेका ने कहा—"शराब पीना कुछ नहीं है, स्वेच्छा से पागल बनना है—यह महान् दुर्गुण है, महापाप है।" इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लायड जॉर्ज ने कहा—शराब ने देश को इतनी हानि पहुँचाई है जितनी हानि दुश्मनों की हजारों पनडुब्बियों ने भी नहीं पहुँचाई है। हमारे दुश्मन हैं—जर्मन, आस्ट्रिया और शराब; जिसमें शराब सबसे बड़ा दुश्मन है। जिन घरों में मदिरा ने प्रवेश कर दिया वे घर कभी भी आबाद नहीं हो सकते, वे तो बरबाद ही होंगे। मदिरा मानवता की जड़ों को जर्जरित कर देती है। मदिरा पीने वाले के पास बिना नियन्त्रण के भी हजारों दुर्गुण स्वतः ही चले जाते हैं।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है—आग की नन्हीं-सी चिनगारी विराट्काय घास के ढेर को नष्ट कर देती है वैसे ही मदिरापान से

---

१. दशवैकालिक ५/२/३६

विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, क्षमा आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।[1]

पापों की जड़

भौतिकवाद की चकाचौंध में पले-पुसे मानव कहते हैं कि यदि दवा के रूप में किंचित् मदिरा सेवन कर लें, तो कोई दोष नहीं है। पर उन्हें पता नहीं है कि मदिरापान जहाँ प्रारम्भ होता है वहाँ पर सर्वनाश हो जाता है। एतदर्थ ही स्कन्द पुराणकार ने मद्यपान को सभी पापों से महान् माना है। उसने कहा है—एक ओर तराजू में वेदों को रख दो, दूसरी ओर ब्रह्मचर्य को तो दोनों बराबर होंगे। एक ओर संसार के सारे पापों को रख दो और दूसरी ओर मदिरापान को रख दो तो दोनों बराबर होंगे।[2]

इस समानता का कारण क्या है? इस पर चिन्तन करते हुए एक विचारक[3] ने लिखा—मदिरापान से चित्त में भ्रान्ति पैदा होती है और भ्रान्त चित्त वाला व्यक्ति विविध प्रकार के पापों का आचरण करता है। इसलिए मदिरापान कभी भी नहीं करना चाहिए।

विनाश का कारण

लीडिया, बेबिलोनिया और रोम राज्य की बरबादी का मूल कारण मदिरापान और वेश्यागमन ही था। ग्रीस के महान् तत्त्वचिन्तक पाइथागोरस के शिष्य माइलो ने जनता को कहा था—यदि तुम अपने जीवन को शान्तिमय व्यतीत करना चाहते हो तो मदिरापान से बिल्कुल दूर रहो। शिवाजी का पुत्र शम्भाजी जो महान् वीर था, मदिरापान से वह राज्य से च्युत हो गया। स्वर्णपुरी द्वारिका का विनाश भी मदिरापान से ही हुआ। एक बार सुकरात से पूछा गया—ऐसा उपाय बताइये जिसमें बिना अस्त्र

---

१. विवेकः संयमो ज्ञान, सत्यं शौचं दया क्षमा।
मद्यात् प्रलीयते सर्वं, तृण्यां बह्निकणादिव ॥ —योगशास्त्र ३/९६

२. एकतश्चतुरोवेदा, ब्रह्मचर्य तथैकतः।
एकतः सर्वपापानि मद्यपानं तथैकतः ॥

३. चित्ते भ्रान्तिर्जायते मद्यपानात् भ्रान्ते चित्ते पापचर्यामुपैति।
पापं त्यक्त्वा दुर्गति यान्ति मूढास्तस्मान्मद्यं नैव पेयं, न पेयम् ॥

उठाये ही किसी जाति, देश या सम्प्रदाय को नष्ट किया जा सके। सुकरात ने कहा—यदि मदिरापान, मुक्त यौनाचार आदि का प्रबन्ध कर दिया जाय तो वह राज्य आदि जो दो वर्ष के पश्चात नष्ट होने वाला है दो सप्ताह में ही नष्ट हो जाएगा। रोमन साम्राज्य, यवन सभ्यता, नन्द आदि हिन्दू राज्यों के विनाश का कारण मदिरापान ही है।

सामाजिक अप्रतिष्ठा

कुरान-शरीफ में कहा है—"ऐ ईमान वाले लोगो! शराब, जुआ और बुतपरस्ती नापाक हैं। ये शैतान के हथियार हैं। इनसे दूर रहोगे तो तुम्हें जन्नत मिलेगी।" हदीस में तो यहाँ तक कहा है—"ऐ मुसलमानो! शराबी को सलाम न करना। यदि वह बीमार हो जाय तो उसका कुशलक्षेम पूछने मत जाना। उसकी मौत के पीछे नमाज न पढ़ना।" शराबी व्यक्ति का इस्लाम धर्म ने इतना बहिष्कार कर रखा है कि उसे किसी प्रकार की सामाजिक प्रतिष्ठा न दी जाय।

इसी प्रकार सभी धर्म-प्रवर्तक, दार्शनिक और चिन्तकों ने मदिरा पान की निन्दा की है और इसे पाप का मूल माना है तथा सामाजिक अप्रतिष्ठा का कारण बताया है।

(४) वेश्यागमन

मदिरापान की तरह वेश्यागमन को भी विश्व के चिन्तकों ने सर्वथा अनुचित माना है क्योंकि वेश्यागमन ऐसा दुर्व्यसन है जो जीवन को कुपथ की ओर अग्रसर करता है। वह उस जहरीले साँप की तरह है जो चमकीला, लुभावना और आकर्षक है किन्तु बहुत ही खतरनाक है। वैसे ही वेश्या अपने शृंगार से, हावभाव और कटाक्ष से जनता को आकर्षित करती है। जिस प्रकार मछली को पकड़ने वाले काँटे में जरा-सा मधुर आटा लगा रहता है जिससे मछलियाँ उसमें फँस जाती हैं। चिड़ियों को फँसाने के लिए बहेलिया जाल के आसपास अनाज के दाने बिखेर देता है, दानों के लोभ से पक्षीगण आते हैं और जाल में फँस जाते हैं, वैसे ही वेश्या मोहजाल में फँसाने के लिए अपने अंगोपांग का प्रदर्शन करती है,

कपट अभिनय करती है जिससे कि वेश्यागामी समझता है, यह मेरे पर न्यौछावर हो रही है, और वह अपना यौवन, बल, स्वास्थ्य धन सभी उस नकली सौन्दर्य की अग्नि ज्वाला में होम देता है।

वेश्या : प्रज्वलित दीपशिखा

वेश्याओं के पीछे बड़े-बड़े धनियों ने अपना धन, वैभव, स्वास्थ्य, बल आदि सर्वस्व समाप्त किया और फिर उन्हें दर-दर के भिखारी बनना पड़ा। बड़े-बड़े वैभवशाली परिवार भी वेश्यासक्ति के कारण तबाह और निराधार हो गये। एतदर्थ ही भर्तृहरि[1] ने कहा—"वेश्या कामाग्नि की ज्वाला है जो सदा रूप-ईंधन से सुसज्जित रहती है। इस रूप-ईंधन से सजी हुई वेश्या कामाग्नि ज्वाला में सभी के यौवन, धन आदि को भस्म कर देती है।"

वेश्या वह प्रज्वलित दीपशिखा है जिस पर हजारों लोग शलभ की तरह पड़-पड़ कर भस्म हो गये। वह एक जलती मशाल है जिसने हजारों परिवारों को जलाकर साफ कर दिया। समाज की अर्थव्यवस्था और पारिवारिक जीवन को अव्यवस्थित करने वाली वेश्या है। वेश्या आर्थिक और शारीरिक शोषण करने वाली जीती-जागती प्रतिमा है। वह समाज का कोढ़ है, मानवता का अभिशाप है, समाज के मस्तक पर कलंक का एक टीका है। समस्त नारी जाति का लांछन है।

वेश्या में स्नेहाभाव

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी की गौरव गरिमा का चित्रण करते हुए कहा गया है—वह समुद्र के समान गम्भीर है, पानी के समान मिलनसार है, गाय के समान वात्सल्य की मूर्ति है, वह महान् उदार, स्नेह सद्भावना और सेवा की साक्षात् प्रतिमा है। वह सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा—तीनों के सद्गुणों से समलंकृत है। पर वेश्या में नारी होने पर भी इन सभी सद्गुणों का अभाव है। लज्जा नारी का आभूषण है। शील सौन्दर्य है। पर वेश्या

---

१. वेश्याऽसौ मदनज्वाला रूपेन्धन समेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥

इस सौन्दर्य और आभूषण से रहित होने के कारण कुरूप है। वेश्याओं से स्नेह की इच्छा करना बालू से तेल निकालने के समान है।[1]

जो भी पुरुष वेश्या के सामने जाता है तो वह उससे कहती है—"हे हृदयेश्वर! आपके अतिरिक्त मेरा कोई प्यारा नहीं है। मैं सबसे अधिक आपको ही प्यार करती हूँ।" इस प्रकार कामान्ध व्यक्तियों को वह अपने चंगुल में फँसाती है। वेश्या संसार का जूठन है।[2] अनेक गुप्त व्याधियों का पिण्ड है। वेश्या केवल पैसे से प्यार करती है। जो भी उसे पैसा देता है उसे वह अपना शरीर बेच देती है। इसलिए सभी चिन्तकों ने वेश्यागमन को एक बहुत बड़ा दुर्व्यसन माना है।

(५) शिकार

शिकार मानव के जंगलीपन की निशानी है। शिकार मनोरंजन का साधन नहीं अपितु मानव की क्रूरता और अज्ञता का विज्ञापन है। क्या संसार में सभ्य मनोरंजनों की कमी है जो शिकार जैसे निकृष्टतम मनोरंजन का मानव सहारा लेता है। शिकार करना वीरता का नहीं, अपितु कायरता और क्रूरता का द्योतक है। शिकारी अपने आप को छिपाकर पशुओं पर शस्त्र और अस्त्र का प्रयोग करता है। यदि पशु उस पर झपट पड़े तो शिकारी की एक क्षण में दुर्दशा हो जायेगी। वीर वह है जो दूसरों को जख्मी नहीं करता। दूसरों को मारना, उनके जीवन के साथ खिलवाड़ करना यह तो हृदयहीनता की निशानी है। भोले-भाले निदोर्ष पशुओं के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना मानवता नहीं दानवता है।

शिकारी के पास धर्म नहीं

शिकार को जैन ग्रन्थों में 'पापर्द्धि' कहा है। पापर्द्धि से तात्पर्य है

---

१. कः प्राज्ञो वांछति स्नेहं वेश्यासु सिकतासु च। —कथा सरित्सागर

२. वेश्याविश्वकलत्रमत्र तबहो पानीयशालाजले।
यद्वत् कान्दविकाशने च शुचिता का प्रायशस्तादृशी॥
तस्मात् सो कृतपुण्यवत् कृतक मुच्छोकोदया किं प्रिया।
पूर्णेऽलं विशदा स्वभावकलुषा दोषाऽपिनेन्दो कुशे॥ —कर्पूर प्रकरण १११

पाप के द्वारा पाप ऋद्धि। क्योंकि शिकारी के पास धर्म नाम की कोई चीज होती ही नहीं, वह तो पाप से ही अपनी आय करता है। इसलिए आचार्य ने शिकारी की मनोवृत्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है—जिसे शिकार का व्यसन लग जाता है वह मानव प्राणी-वध करने में दया को तिलांजलि देकर हृदय को कठोर बना देता है। वह अपने पुत्र के प्रति भी दया नहीं रख पाता।[1] शिकार के व्यसन ने अनेकों के जीवन को कष्टमय बनाया है। शिकारी एक ही पशु का वध नहीं करता, वह अहंकार के वशीभूत होकर अनेकों जीवों को दनादन मार देता है। इसलिए आचार्य वसुनन्दी[2] ने कहा—मधु, मद्य, मांस का दीर्घकाल तक सेवन करने वाला जितने महान् पाप का संचय करता है उतने सभी पापों को शिकारी एक दिन में शिकार खेलकर संचित कर लेता है।

शिकार में आनन्द कहाँ?

श्रीमद्भागवत[3] में व्यास ने कहा है—"जो शिकार के शौकीन हैं, पशुघातक हैं उन प्रेतों के सदृश नर-पिशाचों को यमदूत अपना निशाना बनाकर समाप्त करते हैं।" जो व्यक्ति दूसरों के प्राणों का अपहरण कर कष्ट देते हैं उन्हें सुख कहाँ प्राप्त हो सकता है? जो अपनी विलासिता, स्वार्थ, रसलोलुपता, धार्मिक अन्ध-विश्वास अथवा मनोरंजन के लिए पशु-पक्षियों के रक्त से अपने हाथ को रँगते हैं, उन्हें आनन्द कहाँ?[4]

शिकार में भयंकर विपत्तियाँ

शिकारी व्यक्तियों को शिकार करते समय भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। कभी वह शिकार के लिए तेज वाहन को दौड़ता

---

१. पापद्धी तनुभद्धधोज्झितघृणः पुत्रैऽपि दुष्टाशयः। —कर्पूर प्रकारण

२. महुमज्जमंससेवी पावइ पावं चिरेण जं घोरं।
तं एयदिणे पुरिसो लहेइ पारद्धिरमणेण ॥ —वसुनन्दी श्रावकाचार ६६

३. मृगयारसिका नित्यं अरण्ये पशुघातकाः।
परेतांस्तान् यमभटा लक्ष्मीभूतान् नराधमान् ॥ —श्रीमद्भागवत ८-२२-४६

४. लाटी संहिता २/१४१-१४८

है, कभी सँकरी पगडण्डियों से गुजरते समय चट्टान से टकराता है, तो कभी उसे गहरे गर्त में गिरने का भय रहता है, कभी-कभी शिकार के पीछे दौड़ते समय तीव्र क्षुधा-पिपासा, सर्दी-गर्मी और थकान से भी व्यथित होना पड़ता है। कभी तीक्ष्ण काँटों से पैर बिंध जाते हैं। कभी पहाड़ी, नदी-नाले पार करने पड़ते हैं। कभी जंगली भालू, अजगर, जंगली हाथी, वन सूकर, सिंह, बाघ आदि मिल जाने पर स्वयं के प्राणों के भी लाले पड़ जाते हैं। कभी जंगल में अग्नि लग जाने से प्राण बचाना कठिन हो जाता है। कभी रास्ता भूल जाने से जंगल में इधर-उधर भटकना पड़ता है। इस प्रकार मनोरंजन तो छूट जाता है और स्वयं का जीवन भयंकर विपत्तियों में घिर जाता है।

पशुओं को मारना कहाँ का न्याय?

ऋषियों के आश्रमों में और उसके आसपास शिकार करना निषिद्ध था। एक कवि[1] ने मृग के द्वारा कहलाया—हे राजन्! युद्ध में कदम-कदम पर वीर योद्धा प्राप्त हो सकते हैं। उनके सामने अपने प्रबल पौरुष को आप क्यों नहीं बताते? हमारे जैसे दीन मृगों पर अपना पराक्रम दिखा रहे हैं। आपके इस पुरुषार्थ को धिक्कार है। क्षत्रिय वह है जो शत्रु मुँह में तृण ले लेता है उसे जीवित छोड़ देता है। फिर इन तृणाहारी पशुओं को मारना कहाँ का न्याय है?[2]

इसी प्रकार अंग-शृंगार, फैशन, विलासिता के लिए चिड़िया, झींगुर, भेड़ आदि निरीह और निर्दोष प्राणियों के प्रति जितनी भी हिंसक प्रवृत्तियाँ हैं, जिनमें प्राणियों की घात होती है वे सभी शिकार के अन्तर्गत आ जाती हैं। इसलिए शिकार भयंकर पाप का कारण है।

(६) चोरी

शिकार की तरह चोरी भी सप्त व्यसनों में एक व्यसन है। चोरी का

---

१. पदे पदे सन्ति भटा रणोत्सुका, न तेषु हिंसारस एष पूर्यते।
धिगीदृशं ते नृपते! कुविक्रमं कृपायते यः कृपणे मृगे मयि ॥

२. वैरिष्ठेऽपि हि मुच्यन्ते, प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहारा सदैवेते, हन्यन्ते पशवः कथम्? —धनपाल-तिलकमंजरी

धन कच्चे पारे के खाने के सदृश है। जैसे कच्चा पारा खाने पर शरीर में से फूट निकलता है, वैसे ही चोरी का धन भी नहीं रहता। जो व्यक्ति चोरी करता है वह अपने जीवन को तो जोखिम में डालता ही है साथ ही वह अपने परिवार को भी खतरे में डाल देता है। चोरी करने वाला धन तो प्राप्त कर लेता है किन्तु उसकी शान्ति, सम्मान और सन्तोष नष्ट हो जाता है। चोरी करने वाले के मन में अशान्ति की ज्वालाएँ धधकती रहती हैं। उसका मन सदा भय से आक्रान्त रहता है। उसका आत्म-सम्मान नष्ट हो जाता है, उसमें आत्म-ग्लानि पनपने लगती है।

चोरी का प्रारम्भ छोटी वस्तुओं से होता है और वह आदत धीरे-धीरे पनपने लगती है। जैसे साँप का जहर धीरे-धीरे सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है वैसे ही चोरी का व्यसनरूपी जहर भी जीवन में परिव्याप्त होने लगता है। इसीलिए सभी धर्म-प्रवर्तकों ने चोरी को त्याज्य माना है। वे उसे असामाजिक कृत्य, राष्ट्रीय अपराध और मानवता के विरुद्ध उपक्रम मानते हैं। भगवान महावीर ने कहा—बिना दी हुई किसी भी वस्तु को ग्रहण न करो।[1] यहाँ तक कि दाँत कुरेदने के लिए एक तिनका भी न लो।[2] कोई भी चीज आज्ञा लेकर ग्रहण करनी चाहिए।[3] वैदिक धर्म में भी चोरी का स्पष्ट निषेध है।[4] किसी की भी कोई चीज न ग्रहण करें। महात्मा ईसा ने भी कहा—"तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए।"[5]

चोरी का केन्द्र : लोभ

चोरी का वास्तविक अर्थ है जिस वस्तु पर अपना अधिकार न हो उसके मालिक की बिना अनुज्ञा, अनुमति के, उस पर अधिकार कर लेना, उसे अपने काम में लेना, उससे लाभ उठाना अदत्तादान है। चोरी का मूल केन्द्र लोभ है। लोभ के कारण मनुष्य दूसरों की वस्तु को

---

१. अदिन्नगन्नेसु य णो गहेज्जा। —सूत्रकृतांग १०/२
२. दन्तसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं। —उत्तरा, १६/२८
३. अणुन्नविय गेण्हियव्व। —प्रश्न. २/३
४. कस्यचित् किंमपि नो हरणीयम्। —यजुर्वेद ३६/२२
५. Thous shall not steal. —Bible

हथियाने और अपने अधिकार में करने का प्रयास करता है। चोरी करना एक प्रकार का सामाजिक अपराध है। जिस मानव को समाज और राष्ट्र के प्रति अपना क्या कर्तव्य है यह भान नहीं है वह चोरी जैसा जघन्य कार्य करता है। चोरी के द्वारा वह समाज में अशान्ति-अराजकता फैलता है। जिसे समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का भान है वह कदापि चोरी नहीं करेगा। उसे क्षुधा से छटपटाते हुए प्राण त्यागना स्वीकार होगा किन्तु चोरी करना मान्य नहीं। वह चोरी को बहुत अधर्म कार्य मानता है।

चोरी के प्रकार

प्रश्नव्याकरण सूत्र में चोरी के तीस नाम बताकर कहा है कि चोरी का कार्य अपकीर्ति को करने वाला अनार्य कर्म है, वह प्रियजनों में भेद उत्पन्न करने वाला है। चोरी विविध रूप से की जाती है। मालिक की अनुपस्थिति में, उसकी उपस्थिति में भी, असावधानी से उसकी वस्तु को ग्रहण करना, सेंध लगाकर, जेब काटकर, ताला या गठरी खोलकर अथवा पड़ा हुआ, भूला हुआ, खोया हुआ, चुराया हुआ, कहीं पर रखा हुआ दूसरे के धन पर अधिकार करना चोरी है।[1]

एक चिन्तक ने चोरी के छह प्रकार बताये हैं—(१) छन्न चोरी, (२) नजर चोरी, (३) ठगी करके चोरी, (४) उद्घाटक चोरी, (५) बलात् चोरी, (६) घातक चोरी।

छिपकर या गुप्त रूप से मालिक की दृष्टि चुराकर वस्तु को लेना छन्न चोरी है। देखते ही देखते वस्तु को चुरा लेना, जैसे—दर्जी, सुनार आदि नजर चोरी है। किसी को कपट से धोखा देकर ठगना, मिथ्या विज्ञापन देकर लोगों से पैसा ले लेना ठगी चोरी है। गाँठ, ताला, कपाट, तिजोरी आदि का द्वार खोलकर चुपके से सामान लेकर भाग जाना उद्घाटक चोरी है। रास्ते में चलते हुए यात्री की सम्पत्ति को भय दिखाकर लूट लेना बलात् चोरी है। हमला करके या मानवों को घायल करके किसी के घर, दुकान आदि में घुस जाना और सब कुछ लेकर भाग जाना घातक चोरी है।

1. पतितं विस्मृतं नष्टं, स्थितं स्थापितमाहितम्।
अदत्तं नाददीत एवं परकीय क्वचित् सुधौ॥ —योगशास्त्र २/६६

सभ्य चोरियाँ

संसार में ज्यों-ज्यों चौर्य-कर्म बढ़ रहा है, त्यों-त्यों एक-दूसरे के प्रति अविश्वास पैदा हो रहा है। आज सफेदपोश और सभ्य दिखने वाले व्यक्तियों पर भी लोगों का विश्वास नहीं है कि कब वे जेब साफ कर दें। आधुनिक युग में असभ्य चोरियों के स्थान पर विविध प्रकार की सभ्य चोरियाँ पनप रही हैं। कितने ही बार लोभ के अधीन होकर व्यापारी ग्राहकों से कहता है—यदि मैं अधिक लेता हूँ तो बालक-बालिका खाएँगी या गाय खाएगी। ग्राहक समझता है कि यह अपने बाल-बच्चों की या गाय की कसम खा रहा है। यह मेरे से एक पैसा भी अधिक न लेगा। पर, वह अधिक राशि लेकर अपने लड़के-लड़कियों के व्यवहार में, पढ़ाई में या अपने यहाँ रखी हुई गाय आदि के पालन में खर्च करता है। यह एक प्रकार से वंचना है। अनपढ़ व्यक्तियों से झूठे दस्तावेज लिखाकर, छलकर, अंक बढ़ाकर, रिश्वत आदि लेकर जो धन एकत्रित किया जाता है, वे सभी चोरियाँ हैं।

वस्तुओं में मिलावट करना, बढ़िया बताकर घटिया देना, विभाग करते समय पक्षपात करना, अपने लिए या अपने पारिवारिकजनों के लिए अच्छी चीजें रखकर दूसरों को रद्दी चीजें दे देना, किसी को भी फुसलाकर शब्द-छल द्वारा अर्थ की चोरी करना, नाम की चोरी करना, उपकार की चोरी करना, या उपयोगी वस्तुओं को ले लेना वे सभी क्रियाएँ चोरियाँ ही हैं।

चोरी, चरित्र धन की नाशक

इस प्रकार चोरी एक ऐसा दुर्गुण है जिससे मानव के, दया, अहिंसा, क्षमा, सत्य आदि सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। चोरी से प्राप्त धन, जीवन में शान्ति नहीं देता। भारतीय चिन्तकों ने धन को इतना महत्त्व नहीं दिया है, जितना कि चरित्र और नैतिकता व प्रामाणिकता को दिया है। चोरी करने वाला उस चरित्र धन को नष्ट कर देता है।

चोरी के कारण

चोरी एक ऐसा व्यसन है जो एक बार लग जाने पर छूटता नहीं है।

चोरी के अभ्यन्तर कारण ये हैं—जो व्यक्ति सुन्दर वस्तुओं पर आकर्षित होता और उन्हें प्राप्त करने के लिए लालायित होता है, वह लोभ के वशीभूत होकर दूसरों की वस्तुओं को ग्रहण करता है। जैसे रूप कारण है वैसे शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श के अधीन होकर भी वस्तुओं को हथियाने की कोशिश की जाती है। सभी चोरियों का मूल केन्द्र मनुष्य की पर-द्रव्य के प्रति आसक्ति है।

चोरी के बाह्य कारण भी हैं—(१) बेकारी, (२) दरिद्रता या निर्धनता, (३) फिजूलखर्ची, (४) यशःकीर्ति की लालसा, (५) स्वभाव या कुसंस्कार, और (६) अराजकता।

जो व्यक्ति संस्कारी होगा वह कैसी भी परिस्थिति उत्पन्न हो जाय तथापि चोरी जैसे निकृष्टतम पाप को करना पसन्द नहीं करेगा। जब भी उसके मन में चोरी के विचार उद्‌बुद्ध होंगे तो वह जागरूक द्वारपाल की तरह उस विचार को अपने मन में प्रवेश होने नहीं देगा।

(७) परस्त्री-सेवन

भारत के तत्त्वदर्शियों ने कामवासना पर नियन्त्रण करने हेतु अत्यधिक बल दिया है। कामवासना ऐसी प्यास है, जो कभी भी बुझ नहीं सकती। ज्यों-ज्यों भोग की अभिवृद्धि होती है त्यों-त्यों वह ज्वाला भड़कती जाती है और एक दिन मानव की सम्पूर्ण सुख-शान्ति उस ज्वाला में भस्म हो जाती है।

गृहस्थ साधकों के लिए कामवासना का पूर्ण रूप से परित्याग करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि जो महान् वीर हैं मदोन्मत्त गजराज को परास्त करने में समर्थ हैं, सिंह को मारने में सक्षम हैं, वे भी कामवासना का दमन नहीं कर पाते। एतदर्थ ही अनियन्त्रित कामवासनाओं को नियन्त्रित करके समाज में सुव्यवस्था स्थापित करने हेतु मनीषियों ने विवाह का विधान किया। विवाह समाज की नैतिक शान्ति, पारिवारिक प्रेम और प्रतिष्ठा को

---

१. रूवे अतित्ते य परिग्गहमि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययइ अदत्तं ॥—उत्तराध्ययन सूत्र ३२/२१

सुरक्षित रखने वाला एक उपाय है। गृहस्थ के लिए विधान है कि वह अपनी विधिवत् विवाहित पत्नी में सन्तोष करके शेष सभी परस्त्री आदि के साथ मैथुन विधि का परित्याग करे।[1] विराट् रूप में फैली हुई वासनाओं को जिसके साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण हुआ है उसमें वह केन्द्रित करे। इस प्रकार असीम वासना को प्रस्तुत व्रत के द्वारा अत्यन्त सीमित करे।

परस्त्री से तात्पर्य अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों से है। चाहे थोड़े समय के लिए किसी को रखा जाय या उपपत्नी के रूप में, किसी परित्यक्ता, व्यभिचारिणी, वेश्या, दासी या किसी की पत्नी अथवा कन्या—ये सभी स्त्रियाँ परस्त्रियाँ हैं। उनके साथ उपभोग करना अथवा वासना की दृष्टि से देखना, क्रीड़ा करना, प्रेम पत्र लिखना या अपने चंगुल में फँसाने के लिए विभिन्न प्रकार के उपहार देना, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करना, उसकी इच्छा के विपरीत काम-क्रीड़ा करना, वह बलात्कार है; और उसकी इच्छा से करना परस्त्री सेवन है।

परस्त्री-सेवन : अवैध पापाचार

सामाजिक, धार्मिक और नैतिक सभी दृष्टियों से परस्त्री-सेवन हानिप्रद है। पर पाश्चात्य देशों में एक विचारधारा पनप रही है कि विवाह करना अनुपयुक्त है। क्योंकि विवाह के बन्धन में बँधने से व्यक्ति की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है और उस पर अनेक जिम्मेदारियाँ आ जाती हैं। यदि विवाह न किया जाय तो उन सभी जिम्मेदारियों से मुक्त रहकर अपनी इच्छाओं की तृप्ति की जा सकती है। क्योंकि विवाह करने पर जब चाहे तब खुले रूप में उपभोग कर सकते हैं, पर विवाह न करने पर बहुत अंशों में कामेच्छा पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।

प्रस्तुत तर्क युक्तियुक्त नहीं है। यह निरंकुश स्वच्छन्द कामवासना पूर्ति की जो विचारधारा है, वह अनुचित है। वे विषय-भोग में आसक्त बनकर स्वच्छन्दतापर्वक काम-सेवन करना चाहते हैं। वे विवाह के मूल उद्देश्य को भूल जाते हैं कि विवाह का उद्देश्य केवल विषय वासनाओं का

---

१. सदारसंतोसिए अवसेसं सव्वं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ। —उपासकदशांग

सेवन ही नहीं है। यही कारण है पत्नी को भोग-पत्नी न कहकर धर्मपत्नी कहा गया है। विवाह द्वारा व्यक्ति अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करता है और स्वयं को धर्म-मार्ग में उत्प्रेरित करता है। विवाह-बन्धन में बँधे हुए पति और पत्नी में हार्दिक प्रेम होता है, उनमें एक-दुसरे की सेवा और सद्भावना रही हुई होती है। किन्तु परपुरुष या परस्त्री-सेवन में उस प्रकार के प्रेम का अभाव होता है। उससे केवल अवैध पापाचार पनपता है। विवाहिता जीवन में रुग्णावस्था, वृद्धावस्था, या अन्य किसी भी प्रकार की शारीरिक स्थिति होने पर पति पत्नी की और पत्नी पति की सेवा करती है। इसके अतिरिक्त सन्तान भी अपने माता-पिता की सेवा करती है। पत्नी गृहलक्ष्मी के रूप में रहती है। वह मंत्री की तरह सलाह देती है, सेवा करने में वह दासी की भूमिका अदा करती है। धर्म कृत्यों के आचरण करने के लिए पुरुष को उत्प्रेरित करती है। उसकी क्षमा पृथ्वी के समान अनूठी होती है और वह माँ के समान स्नेह से भोजन कराती है।

किन्तु परस्त्रियों में यह विशेषताएँ नहीं होतीं। कई बार परस्त्रीगामियों का अपना जीवन भी संकट में पड़ जाता है। यदि उसके पति को ज्ञात हो जाय या वह कुँआरी कन्या हो। इन सभी कार्यों में बदनामी के साथ ही मन में सदा अशान्ति बनी रहती है। इसीलिए बाल्मीकि ऋषि[1] ने लिखा—परस्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखने जैसा कोई पाप नहीं है। कविकुल गुरु कालिदास[2] ने परस्त्री-सेवन को अनार्यों का कार्य कहा है। आचार्य मनु[3] ने कहा है—इस विश्व में पुरुष के आयुष बल को क्षीण करने वाला परस्त्री-सेवन जैसा अन्य कोई निकृष्ट कार्य नहीं है। बाइबिल में भी कहा है—जो व्यक्ति परस्त्री के साथ व्यभिचार करता है वह विवेकशून्य है और स्वयं अपनी आत्मा का हनन करता है। 'ओल्ड टेस्टमेन्ट' में कहा है—"पराई स्त्री की सुन्दरता देखकर उसकी अभिलाषा मत कर। कहीं ऐसा नहीं हो कि वह तुम्हें अपने कटाक्षों में फँसा ले।"

---

१. परदाराभिमर्शात्तु नान्यत पापतरं महत्। —बाल्मीकि रामायण ३३८/३०

२. अनार्यः परदार व्यवहारः। —अभिज्ञान शाकुन्तल

३. नहीदृशमनायुष्यं लोके किंचित् दृश्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परस्त्रीपसेवनम् ॥ मनुस्मृति ४/१३४

परस्त्रीगामी सदा अविश्वसनीय

परस्त्रीगामी अत्यन्त निन्दा का पात्र बनता है। उस पर कोई भी विश्वास नहीं करता। उसकी पत्नी भी उससे सदा रूठी रहती है। परस्त्रीगामी का मन सदा कलुषित रहता है। वह जिस किसी भी नारी को देखता है, उस पर आकर्षित हो जाता है। उसकी अनियन्त्रित वासनाएँ उसको सदा पथभ्रष्ट बनाए रखती हैं। उसका धर्म व कर्त्तव्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता; केवल वासना से सम्बन्ध रहता है। इसलिए परस्त्रीगामी का जीवन सदा असंतुष्ट रहता है। वह कुत्ते की तरह इधर-उधर की जूठन चाटता फिरता है।

परस्त्रीगमन के कारण

समाजशास्त्रियों ने परस्त्रीगमन के मुख्य कारण बताये हैं—(१) क्षणिक आवेश, (२) अज्ञानता, (३) बुरी संगति, (४) पति के परस्त्रीगमन को देखकर उसकी पत्नी भी पथ-भ्रष्ट होती है, (५) विकृत साहित्य-पठन, (६) धन मद के कारण, (७) धार्मिक अन्ध-विश्वास, (८) सहशिक्षा, (९) अश्लील चलचित्र, (१०) अनमेल विवाह, (११) नशीले पदार्थ सेवन।

जिस प्रकार पुरुष के लिए परस्त्री-सेवन व्यसन है उसी तरह स्त्री के लिए परपुरुष-सेवन भी निन्दनीय है। ये सातों व्यसन केवल पुरुष जाति के लिए ही नहीं हैं महिलाओं के लिए भी हैं। उन्हें भी इन व्यसनों से मुक्त होना चाहिए।

जैन साधना पद्धति में व्यसन-मुक्ति साधना के महल में प्रवेश करने का प्रथम द्वार है। जब तक व्यसन से मुक्ति नहीं होती, मनुष्य में गुणों का विकास नहीं हो सकता। इसलिए जैनाचार्यों ने व्यसन-मुक्ति पर अत्यधिक बल दिया है। व्यसन से मुक्त होने पर जीवन में आनन्द का सागर ठाठें मारने लगता है।

कथनी करनी में एकरूपता

भारतीय सन्त परम्परा का झुकाव सदा से गुणों के प्रति रहा है।

व्यक्ति की बाह्य प्रतिष्ठा केवल सामाजिक वैषम्य का प्रतीक है। उसकी पावन प्रतिष्ठा साधनागर्भित विश्व-कल्याणकारी जीवन प्रणाली पर अवलम्बित है। आज का राजनैतिक जीवनयापन करने वाले सच्चरित्रता को, जो राष्ट्र के वश को संवर्द्धित करने वाली शक्ति है, उसकी उपेक्षा कर रहा है। वह अपनी दुर्बलता को 'यह मेरे व्यक्तिगत जीवन का प्रश्न है' कहकर टालना चाहता है। पर भारत में यह कथनी और करनी का वैषम्य कभी पनपा नहीं है। आचार और विचार का साम्य ही जन-जीवन को उद्दीप्त कर प्रशस्त पथ का प्रदर्शन कर सकता है।

जनतन्त्रमूलक युग के लिए व्यसन-मुक्ति एक ऐसी विशिष्ट आचार पद्धति है जिसके परिपालन से गृहस्थ अपना सदाचारमय जीवन व्यतीत कर सकता है और राष्ट्रीय विकास के कार्यों में भी सक्रिय योगदान दे सकता है। दर्शन के दिव्य आलोक में ज्ञान के द्वारा चारित्र की सुदृढ़ परम्परा स्थापित कर सकता है। यह ऐसी एक आचार-संहिता है जो केवल जैन गृहस्थों के लिए ही नहीं किन्तु मानव-मात्र के लिए उपयोगी है। वह नागरिक जीवन को समृद्ध और सुखी बना सकती है तथा निःस्वार्थ कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित होकर वह राष्ट्र में अनुपम बल और ओज का संचार कर सकती है, सम्पूर्ण मानव समाज में सुख-शान्ति और निर्भयता भर सकती है। अतः व्यसन-मुक्त जीवन सभी दृष्टियों से उपयोगी और उपादेय है।

■■

२

मानवीय आहार : शाकाहार

विषय-प्रवेश : मूल प्रतिपाद्य

मनुष्य जाति के लिए दो प्रकार के आहार प्रचलित हैं। एक निरामिष और दूसरा सामिष आहार के नाम से जाना जाता है। ये ही अपरनामों क्रमशः शाकाहार एवं मांसाहार से भी चर्चित होते हैं। 'मांसाहार' अपने नाम की व्याख्या स्वयं ही कर देता है—वह आहार जिसका उद्‌गम कोई प्राणी है। अण्डा, मांस, मछली आदि इसी श्रेणी के आहार हैं। इसके विपरीत जो खाद्यपदार्थ वनस्पति हैं, अथवा जो वनस्पति के उत्पाद हैं वे शाकाहार हैं। फल, सब्जी, अन्न, दलहन, तिलहन आदि शाकाहारी खाद्य पदार्थ हैं। जीवन रक्षण के लिए निश्चित ही आहार की अनिवार्य अपेक्षा बनी रहती है। शरीर को सक्रिय, सशक्त और स्वस्थ भी आहार ही रखता है। किन्तु कौन-सा आहार मानवोचित है? कौन-सा आहार मनुष्य की मनुष्यता के अनुरूप है—मांसाहार या शाकाहार यही प्रासंगिक रूप में हमारा प्रतिपाद्य है। आहार का कौन-सा रूप मनुष्य को मानव बनाये रख सकता है और मानव धर्म-सम्मत तथा मनुष्य के लिए प्राकृतिक एवं स्वाभाविक है? ये कुछ प्रश्न प्रस्तुत रूप में विचारणीय हैं।

मनुष्य जीव जन्तु विकास क्रम की अन्तिम कड़ी और सर्वाधिक विकसित नस्ल है। इसके पूर्व यदि इसकी कोई अपेक्षाकृत कम अवस्था रही होगी तो वह लगभग वानरवत् रही होगी। वानर सर्वथा शाकाहारी

प्राणी है। इससे यह संकेत ग्रहण किया जा सकता है कि प्रकृति ने मनुष्य को शाकाहारी ही बनाया है। समस्त प्राणी-जगत में मनुष्य का श्रेष्ठत्व उसके बौद्धिक विकास और चेतना के कारण है। इतर प्राणियों में हाथी सर्वाधिक बुद्धिमान होता है। वह बड़ा भीमकाय और अपार शक्तिशाली है, किन्तु है शाकाहारी। इस साम्य के आधार पर भी संकेत यही मिलता है कि शाकाहार ही मनुष्य के लिए है और शाकाहारी बने रहकर ही वह अपनी मानवीयता का निर्वाह कर सकता है। मांसाहार उसके लिए अप्राकृतिक, अस्वाभाविक और अनुपयुक्त है। सामिष आहार से मनुष्य अपने मनुजत्व से पतित हो जाता है।

मानवता के आधारभूत तत्त्व

मनुष्य प्राणी जगत का एक भावनाप्रधान, अति सचेतन सदस्य है। उसमें चिन्तन-मनन, विवेक और निर्णय की बुद्धि है। अन्य प्राणियों के साथ उसके व्यवहार-निर्धारण में उसकी ये सारी शक्तियाँ और विशेषताएँ सक्रिय हो जाती हैं। इससे भावनाओं और आदर्शों का एक ऐसा समुच्चय तैयार हो जाता है जो व्यापकतर होकर मनुष्यता की संज्ञा धारण कर लेता है। प्रबुद्ध जनों, धर्म ग्रन्थों, ऋषि-महर्षियों ने मानवाचार का मार्गदर्शन किया और उससे मानवता का परिष्कार हुआ, उसने एक प्रौढ़ और परिपक्व स्वरूप ग्रहण किया है। सभी महापुरुषों द्वारा यह परामर्श दिया गया है कि मनुष्य को हिंसा, क्रूरता, असत्य, क्रोध, द्वेष, और अन्य जीवों के प्रति उत्पीड़क व्यवहार से बचना चाहिए। ऐसा व्यवहार अपराध ही नहीं, पाप भी है। इसके विपरीत अहिंसा, दया, क्षमा, सत्य, करुणा आदि को धर्म की संज्ञा देकर इन्हें अपनाने के लिए मनुष्य को प्रेरित भी किया गया है। ये ही वस्तुतः वे मूलभाव हैं, वे विधि-निषेध हैं, जिनसे मनुष्यता की रूपरेखा निरूपित होती है। यही शुद्ध और व्यापक मानव धर्म है।

मानवधर्म के इन विभिन्न अंग-उपांगों को न्यूनाधिक महत्व के साथ संसार के सभी स्थापित धर्मों के लिए आधार माना गया है। प्रत्येक धर्म का मूल प्रयोजन मानव को मानव बनाये रखने का रहा है, उसके व्यवहार को इसी दृष्टि से नियमित करने की विराट् चेष्टा की गयी है। इस कसौटी

पर परीक्षा करने पर सामिष आहार मानवोचित नहीं ठहरता। उसमें हिंसा भी है, क्रूरता भी है। यह तामसिक आहार है जो मनुष्य को तामसिक वृत्ति का ही बनाता है। शाकाहार ही मानवोचित या मानवीय आहार निर्णीत होता है। उसमें स्नेह और शान्ति का तत्त्व है। शाकाहार सात्त्विक प्रकृति का है।

विभिन्न धर्म परम्पराओं में आहार-विधान

सभी धर्मों ने हिंसा का विरोध किया है। जैन परम्परा में तो अहिंसा को परमधर्म स्वीकार किया गया है, अतः इसमें तो मांसाहार का तीव्र विरोध हुआ ही है, किन्तु जैन धर्म में ही अहिंसा का समर्थन और मांसाहार का विरोध है। अन्य धर्मों में नहीं है यह बात नहीं। प्रायः सभी धर्मों का स्वरूप ऐसा ही रहा है। हाँ यह बात अन्य ही है कि रसना के रसाधीन, स्वादस्वार्थी लोग मांसाहार के लोभ में यह कह देते हों कि उनके धर्म में मांसाहार का विधान है। यह प्रचार सर्वथा भ्रामक और मिथ्या ही है, अन्यथा सभी धर्मों में शाकाहार का ही विधान किया गया है।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में मांसाहार की निन्दा की गई है। इसे सदोष, आयु क्षीण करने वाला, पाप योनियों में ले जाने वाला बताकर त्याज्य रूप में वर्णित किया गया है। हिन्दू धर्म भी करुणा, अहिंसा, सहानुभूति, प्रेम और शान्ति को पर्याप्त महत्ता देता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्मपितामह ने जीव हिंसा करने वाले, मांस व्यवसाय करने वाले और मांसाहार करने वाले को दोषी और पापी बताया है। श्रीमद्भागवत गीता में भी शाकाहार की सात्त्विक आहार के रूप में स्तुति और अनुशंसा की गयी है और मांसाहार को तामसिक कहकर त्याज्य श्रेणी में रखा गया है। महाभारत के आदि पर्व में अहिंसा को परम धर्म कहा गया है।

इसलाम में भी मांसाहार का निषेध है। सूफी सन्तों ने शाकाहार का निर्देश दिया एवं वे स्वयं भी मांसाहार से दूर रहते थे। सन्त मीर दाद का कथन है कि आदमी जिस जानवर का मांस काट कर खाता है उसका बदला उसे अपने मांस से देना पड़ेगा। लंदन मस्जिद के इमाम बशीर अहमद मसेरी स्वयं शाकाहारी हैं। उन्होंने कुरआन मजीद और पैगंबर

मोहम्मद साहब के हवाले से जीवहिंसा का विरोध किया है।

ईसाई मत के प्रवर्तक हजरत ईसा मसीह को जोन बेप्टिस्ट से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ था जो मांसाहार विरोधी रहे। प्रभु यीशु की दो प्रमुख शिक्षाओं में से एक यही है कि—"तुम जीव हत्या नहीं करोगे।" उन्होंने कहा था—"यदि तुम शाकाहारी भोजन करोगे तो तुम्हें जीवन व शक्ति मिलेगी। लेकिन यदि तुम मृत भोजन (मांसाहार) करोगे तो वह मृत आहार तुम्हें भी मार देगा। क्योंकि जीवन से ही जीवन मिलता है और मौत से हमेशा मौत ही मिलती है।"

सिक्ख धर्म भी मांसाहार विरोधी ही है। गुरु ग्रन्थ साहब में कबीर आदि अनेक सन्तों की वाणियाँ संकलित हैं जो जीव दया और अहिंसा का उपदेश देती हैं। गुरु ग्रन्थ साहब के एक हुक्मनामे में कहा गया है कि मांस, मछली, पिआज, नशीले पदार्थ, शराब आदि वर्जित पदार्थ हैं। गुरुद्वारों के लंगरखानों में शाकाहारी भोजन ही बनता और बँटता है।

बौद्ध धर्म में सदाचार के पाँच नियम—पंचशील का प्रथम नियम ही अहिंसा सम्बन्धी है। मनुष्य को निर्देश दिया गया है कि वह प्रत्येक प्राणी को अपने बच्चों के समान प्यार करे, आपात्काल में भी मांसाहार की अनुमति नहीं दी गयी है और निरामिष भोजन की ही उपयुक्तता स्थिर की गयी है।

तात्पर्य यह है कि शाकाहार ही विश्व स्तर पर धर्मसम्मत है और मांसाहार का समर्थन किसी भी धर्म द्वारा नहीं किया गया है। धर्म मानवता का स्वरूप निर्माण ही नहीं करता, उसको संरक्षित भी करता है। इस रूप में मानवीय आहार का दर्जा मात्र शाकाहार को प्राप्त हो सकता है, मांसाहार को नहीं।

यदि विश्व के धर्मों में हिंसा और मांसाहार का विरोध है तो जैनधर्म में तो इसका आत्यन्तिक विरोध है। 'जीओ और जीने दो'—जिस धर्म का आचरण आदर्श हो, अहिंसा जिस का प्राण हो—उस जैन धर्म में सामिष भोजन के समर्थन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इस आहार के लिए वध आवश्यक है और जैन धर्म इस घोर हिंसा को ध्यान में लाने की भी अनुमति नहीं देता। यह धर्म शिक्षा देता है—"विश्व के

समस्त प्राणियों के साथ मैत्री भाव बढ़ाना चाहिए।"[1] हम तो क्या "यदि कोई अन्य व्यक्ति भी धर्म के नाम पर जीव की हिंसा करता है, तो हम इससे भी लज्जा का अनुभव करते हैं।"[2] मनुष्य मात्र द्वारा की गयी हिंसा के कारण जिस धर्म में ऐसा भाव हो—वह भला स्वयं हिंसानुमोदी कैसे हो सकता है। मनुष्य के लिए निर्देश दिया गया है कि "स्थावर व जंगम प्राणियों का प्राणघात वह न स्वयं करे, न दूसरों से करवाए न ही किसी करने वाले का अनुमोदन करे।"[3] अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर इसी आशय के निर्देश मिलते हैं; यथा—"जैसा मैं हूँ वैसे ही ये प्राणी हैं, जैसे ये सब प्राणी हैं वैसा ही मैं हूँ—यह सोचकर सभी प्राणियों को अपने समान समझकर न स्वयं किसी का वध करे न किसी अन्य से करवाए।"[4] यही बात शास्त्रों में यों भी समझायी गयी है कि—"जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है, जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तू ही है। स्वरूप दृष्टि से सभी चैतन्य समान हैं।"[5] जैन धर्म तो व्यक्ति को स्वसुख का ही मार्ग नहीं बताता—अन्य के सुख में बाधक न बनने की प्रेरणा देता है। कहता है—सभी जीना चाहते हैं, सभी सुख की कामना करते हैं। सभी प्राणी सुख चाहते हैं—उन्हें सुखी रहने दो जीने दो। "सभी प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है। सुख सभी को अच्छा लगता है और दुःख बुरा। वध सब को अप्रिय है और जीवन प्रिय। अतः वध किसी का न करो"[6]—यह मार्ग दिखाने वाला धर्म (जैन धर्म) अन्य धर्मों से भी अपना समर्थन प्राप्त करते हैं। इस दशा में धम्मपद यह विधान भी प्रस्तुत करता है—"जो अपने सुख

---

१. 'मेत्तं च सब्बलोकस्मि मानसं भावये अपरिमाणं' —सुत्तनिपात १-८-८

२. आचारांग।

३. पाणे न हाने न च घातयेव न चानुमन्या हनत परेस।
सब्बेपु भूतेपु निधाय दण्डं ये भावराये च तसन्ति लोके ॥ —सुत्तनिपात

४. यथा अहं तथा ऐते, यथा ऐते तथा अहं।
अतानं उपमंकत्वा, न हनेय्यन घातये ॥ —सुत्तनिपात ३-२७-२८

५. —आचारांग १-५-५

६. सव्वे पाणा पियउया, सुहसाया दुख पडिकुला
अप्पियवध पियजीवणे जीवउकामा
सव्वेसि जीवयं पियं नाइवाएज्ज कंचणं —आचारांग १-२-६

की इच्छा से दूसरे प्राणियों की हिंसा करता है—उसे न यहाँ सुख मिलता है, न परलोक में।"[1] जैन धर्म तो ज्ञान का सार ही अहिंसा को मानता है। सूत्र कृतांग में कहा गया है—

एयं खु नाणियो सारं जं न हिंसइ किंचण
अहिंसा समयचेव, एतावंतं वियाणिया

अर्थात—ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि अहिंसा मूलक समता ही धर्म का सार है।

अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है जिस का अत्यन्त बारीकी के साथ विवेचन किया गया है और पूर्ण अहिंसा के लिए उसके प्रत्येक अंग-उपांग का सूक्ष्मता के साथ पालन करने का विधान किया है। मन, वचन और कर्म से अहिंसा का अनुसरण अपेक्षित माना गया है। हिंसा के १०८ भेद माने गये हैं। हिंसा के विषय में सोचना भी पाप माना गया है। ऐसे शब्द का प्रयोग जो किसी के मन को पीड़ा दे—वह भी हिंसा है। पशु-पक्षियों को बन्धन में डालना भी जहाँ हिंसा और पाप माना जाता हो, वहाँ प्राण-हनन की कल्पना भी कैसे की जा सकती है। अहिंसामूलक जैन धर्म में मांसाहार का तीव्र विरोध अति स्वाभाविक ही है। सभी धर्म अहिंसा के पर्याय हो गये हैं और अहिंसा शाकाहार का। कोई भी धर्म मांसाहार की अनुमति नहीं देता।

मनुष्य शाकाहार के लिए : शाकाहार मनुष्य के लिए

मनुष्य शाकाहारी प्राणी है, मांसाहारी नहीं। यह सत्य है कि प्राणियों के दो वर्ग, आहार के आधार पर हैं, किन्तु प्रकृति ने इन दोनों वर्गों के लिए प्राणियों का निर्धारण भी कर दिया है। जो मांसाहारी हैं वे शाकाहारी नहीं बन सकते और जो शाकाहारी हैं वे मांसाहारी नहीं बन सकते। दोनों वर्गों के प्राणियों की शारीरिक संरचना भी प्रकृति ने अपने-अपने आहार की अनुरूपता में की है। अतः एक का आहार दूसरे वर्ग के लिए अनुकूल

१. सुख कामानि भूतानि, यो दण्डेन विहिंसति
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखम् —धम्मपद १०/३

भी नहीं रहता। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसने शाकाहारी वर्ग में होते हुए भी हठपूर्वक मांसाहारी वर्ग में भी प्रवेश कर लिया है। अनेक भ्रान्तियाँ और भ्रामक प्रचार उसे मांसाहारी बने रहने को प्रेरित भी करते हैं, किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि प्राकृतिक रूप में शाकाहारी है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि मांसाहार मानव की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्णतः आपूर्ति नहीं करता। कोई शुद्ध शाकाहारी तो रह सकता है, किन्तु कोई शुद्ध मांसाहारी नहीं रह सकता। सामिष भोज्य पदार्थों में अनेक तत्त्व हैं ही नहीं जो शरीर के लिए आवश्यक हैं; यथा—कार्बोहाइड्रेट, फाइबर, विटामिन आदि। कुछ तत्त्व आवश्यकता से कम मात्रा में होते हैं। इन की आपूर्ति शाकाहार से ही सम्भव है।

जहाँ तक शरीर-संरचना का प्रश्न है मानव का वर्ग शाकाहारी ही है, मांसाहारी नहीं। मांसाहारी प्राणियों के नाखून पैने और नुकीले होते हैं। दाँत भी लम्बे-लम्बे और पैने होते हैं, दाढ़ें भी मांसाहारी प्राणियों में नुकीली ही होती हैं। ऐसा होना उनके लिए आवश्यक भी है, ताकि वे अपने शिकार को चीर-फाड़ सकें। इसके विपरीत मनुष्य के नाखून सिरों पर भी चपटे होते हैं, दाँत और दाढ़ें भी पैनी और नुकीली नहीं चपटी होती हैं। उसे अपने आहार को चीरना नहीं होता। मांसाहारी अपने भोजन को निगलता है, शाकाहारी चबाता है। चबाने-पीसने के लिए चपटी दाढ़ें ही आवश्यक रहती हैं। जबड़े की संरचना भी इसी के अनुरूप होती है। सभी प्राणियों का ऊपर का जबड़ा स्थिर और निचला जबड़ा चलायमान होता है किन्तु दोनों वर्गों के प्राणियों के निचले जबड़े की गति में अन्तर होता है। मांसाहारी प्राणियों का जबड़ा ऊपर-नीचे की ओर ही गतिशील रहता है ताकि वह निगल सके। किन्तु शाकाहारियों को भोजन चबाना पड़ता है फिर निगलना पड़ता है अतः उसका निचला जबड़ा दाएँ-बाएँ भी चलता है (ताकि चबा सके) और ऊपर-नीचे भी (ताकि निगल सके) इसी प्रकार मांसाहारी प्राणियों की जीभ खुरदरी होती है ताकि अपने खाद्य पर उसकी पकड़ बन सके और उसे पीछे भीतर की ओर धकेला जा सके। शाकाहारियों को इसकी आवश्यकता नहीं होती, अतः उसकी जीभ चिकनी

होती है। मांसाहारी जीव पानी भी जीभ निकाल कर चाटते हुए पीते हैं। शाकाहारी होंठों से पानी पी लेते हैं। मुखावयवों की इस संरचना के आधार पर मनुष्य की परीक्षा की जाय तो वह शाकाहारी ही सिद्ध होता है। प्रकृति ने उसे इसी वर्ग के लिए संरचित किया है।

दोनों आहारों की पाचन शैली में भी अन्तर है और इसी आधार पर दोनों वर्गों के उदरांगों की रचना हुई है। मांस शीघ्र ही सड़ने लग जाता है और विषाक्त हो जाता है। यह प्रक्रिया उदरस्थ हो जाने के पश्चात् भी बनी रहती है। अतः मांसाहारियों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि खाया गया मांस शीघ्र ही (विषाक्त होने से पूर्व) बाहर निकाल दिया जाय। अतः उनकी आँतों की लम्बाई कम धड़ की ६ गुनी अथवा सारे शरीर की लम्बाई के बराबर होती है। इसके विपरीत शाकाहारियों की ऐसी आवश्यकता नहीं होती। उन्हें अपना खाद्य पचाने में समय भी लगता है, अतः उनकी आँतें अपेक्षाकृत अधिक लम्बी (शरीर की लम्बाई से चार गुनी और धड़ की लम्बाई से १२ गुनी) होती हैं। आश्चर्य है कि लम्बी आँतों वाला होकर भी मनुष्य मांसाहारी बने रहना चाहता है। उदर के भीतर मांस विषाक्त होकर रोगजनक हो जाता है—यह भय भी क्या उसे त्रस्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है। मांसाहारियों के जिगर और गुर्दे भी शाकाहारियों की तुलना में बड़े होते हैं, ताकि वे मांसादि के बेकार भाग को बाहर निकाल दें। यह सुविधा मनुष्य के शरीर को प्राप्त नहीं हो पाती—क्या इससे भी स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न नहीं होता। इसके अतिरिक्त शाकाहारी प्राणियों के पाचनांगों में हाइड्रोक्लोरिक एसिड की मात्रा मांसाहारियों की अपेक्षा दस गुनी कम होती है। इस कम मात्रा के साथ मांसाहार को पचाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उन्हें तो यह मात्रा शाकाहार की अनुरूपता में मिली हुई है। एक और बड़ा महत्त्वपूर्ण अन्तर है कि भोजन के पचाने में सहायक होने वाली लार दोनों वर्गों के प्राणियों के पास होती है किन्तु मांसाहार को पचाने के लिए लार का अम्लीय होना आवश्यक होता है और शाकाहार के लिए क्षारीय लार की आवश्यकता होती है। प्रकृति ने व्यवस्था भी इसी प्रकार की की है। अम्लीय लार के अभाव में मांसाहारी मनुष्यों की समस्या को भी सुगमतापूर्वक समझा जा

सकता है। इन विभेदों के आधार पर भलीभाँति यह प्रतिपादित किया जा सकता है शाकाहार ही मनुष्य के लिए प्राकृतिक आहार है और निरामिष भोजन ही इस प्रकार मानवीय कहा जा सकता है।

मनुष्य शाकाहारी कोटि का है, मांसाहारी कोटि का नहीं—इस तथ्य का प्रतिपादन कुछ अन्य बातों से भी होता है। उदाहरणार्थ—मांसाहारी प्राणियों की सूँघने की शक्ति बड़ी तीव्र होती है। उनके नेत्र अंधेरे में चमकते हैं और अंधेरे में भी ये दूर तक देख सकते हैं। ये लक्षण शाकाहारियों में नहीं पाये जाते—मनुष्य में भी नहीं। शाकाहारियों के शावक जन्म से ही देखने लग जाते हैं। मांसाहारियों के शावक जन्म के प्रायः एक सप्ताह बाद ही देख पाते हैं, इसके पूर्व तो वे दृष्टि शून्य होते हैं। मनुष्य के शिशुओं में पहले प्रकार का शाकाहारियों जैसा लक्षण होता है। मांसाहारी प्राणियों का स्वर कर्कश और तीव्र होता है। शाकाहारियों का स्वर कर्णप्रिय होता है वह कर्कश भी नहीं होता और तीव्र भी नहीं होता, मधुर और मन्द होता है। इस पहचान के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्रकट होते हैं।

—मनुष्य की दैहिक संरचना शाकाहारी वर्ग की है।
—प्रकृति ने मनुष्य को शाकाहारी रूप में ही रचा है।
—शाकाहार ही सभी दृष्टियों से मनुष्य के अनुकूल है।
—मांसाहार मनुष्य के अनुरूप भी नहीं, लाभप्रद भी नहीं है।
—मांसाहार पर मनुष्य सम्पूर्णतः निर्भर नहीं रह सकता।
—शाकाहार ही सभी दृष्टियों से मानवीय आहार है।

शाकाहार ही क्यों?

प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। इसका महत्त्व इस कारण और भी बढ़ जाता है कि इसका पूरक प्रश्न यह भी बन जाता है कि 'मांसाहार क्यों नहीं?' दोनों प्रश्नों को संग-संग उत्तरित करना ही समीचीन भी है। शाकाहार सात्विक है, परिपूर्ण है, प्राकृतिक है, मानवानुकूल है, आरोग्यपूर्ण है, नैतिक है, अध्यात्म सहायक है। इसके विपरीत मांसाहार तामसिक है, अपूर्ण है, अप्राकृतिक है, मानवानुकूल नहीं है, रोगोत्पादक है, अनैतिक है, अध्यात्मबाधक

है। इस कारण सार रूप में कहा जा सकता है कि शाकाहार ही मानवीय आहार है, मांसाहार यह गौरव प्राप्त नहीं कर सकता। यथार्थ तो यह है कि सामिष भोजन मनुष्य के लिए आहार है ही नहीं। यह तो स्वादलोलुपता का प्रतीक बन गया है। विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि मांसाहार जितनी शक्ति या ऊर्जा उपलब्ध कराते हैं उनसे कई गुना अधिक ऊर्जा तो शाकाहारी पदार्थों से प्राप्त हो जाती है। मूँगफली (१००ग्राम) से ही ५७० कैलोरी ऊर्जा मिल जाती है जब की इतनी मात्रा में अण्डा १७३ और मांस ११८ कैलोरी ऊर्जा ही दे पाते हैं। यह धारणा अब निर्मूल सिद्ध हो गयी है कि मांसाहार शक्तिप्रद होता है और शाकाहार असार है। दो-तीन सप्ताह से अधिक कोई भी मनुष्य केवल मांसाहार पर निर्भर रह कर जी नहीं सकता। मांसाहार हृदयाघात, अपस्मार, मधुमेह, रक्तचाप, कैंसर आदि भयावह और प्राणांतक रोगों का जनक है जब कि शाकाहार न केवल आरोग्यदायक, अपितु अनेक रोगों की चिकित्सा में औषधि स्वरूप सहायक भी होता है। स्वाद और उदरपूर्ति बस यही आहार की भूमिका नहीं होती। उससे तो मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास की सिद्धियाँ भी सम्भव होनी चाहिए। शाकाहार से ही ये सम्भव हैं मांसाहार से नहीं। "मांसाहार बर्बर, नृशंस अमानवीय, अनैतिक और असांस्कृत है। भारतीय संस्कृति से इसका तिलभर भी सम्बन्ध नहीं है। ...वास्तव में शाकाहार ही मनुष्य को सर्वनाश से बचा सकता है।" एक जैन महात्मा के इन शब्दों में शाकाहार का महात्म्य प्रतिपादित हो जाता है। शाकाहारी श्री यशपाल जैन का कथन है—"शाकाहार आत्मानुशासन का दूसरा नाम है। यह मात्र आहार नहीं इन्द्रिय संयम भी है। इसके द्वारा हम मन पर पूरा काबू पा सकते हैं। अपनी कामनाओं और वासनाओं का नियमन कर सकते हैं।" मनुष्य का चरम लक्ष्य आध्यात्मिक उत्थान है। शाकाहार ही इसमें सहायक होता है, मांसाहार नहीं।

क्या शाकाहार में भी हिंसा सम्मिलित है?

सवाल बड़ा नाजुक है। इसका दो टूक उत्तर देना ठीक न हो शायद। संयत रूप में गम्भीरता के साथ मनन की अपेक्षा यह प्रश्न रखता है।

ध्यान से देखें तो ऐसा प्रश्न कोई भी व्यक्ति उठाये—इससे उसके चित्त का दुराग्रह प्रतिभासित नहीं होता। वह यह तर्क प्रस्तुत कर सकता है कि वनस्पतियों में भी प्राण हैं, अतः नैतिक दृष्टि से फिर शाकाहार और मांसाहार में अन्तर ही क्या रह गया है।

यह सत्य है कि शाकाहार वनस्पति और उनके उत्पादों पर ही आश्रित है। यह भी असत्य नहीं कि वनस्पति भी सप्राण है, किन्तु वनस्पति और अन्य प्राणियों में कुछ अन्तर भी अवश्य है। वस्तुतः जीव दो प्रकार के होते हैं—चेतन और जड़। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि चेतन हैं, वनस्पति जड़ है। वृक्षों के पत्ते, फूल, फल परिपक्व अवस्था में आकर स्वतः टूट कर पृथक् हो जाते हैं, झड़ जाते हैं। टहनियाँ काट दी जाएं—तो फिर से नयी निकल आती हैं। चेतन प्राणी का कोई अंग यों झड़ता नहीं, काटने पर पुनः विकसित भी नहीं होता। वृक्ष की कलम भी लगायी जा सकती है। यह कहना कुतर्क ही होगा कि वनस्पति और अन्य प्राणी समान ही होते हैं। पंच तत्त्वों से प्राणियों की संरचना होती है। ये तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इन तत्त्वों के संयोग से तो जीव की रचना होती है, किन्तु सभी प्रकार के प्राणियों के लिए इन सभी तत्त्वों की अपेक्षा नहीं होती। मनुष्य के लिए पाँचों तत्त्व अपेक्षित हैं तो पशु के लिए चार ही तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। पक्षियों में तीन तत्त्व ही प्रमुख हैं—वायु, जल और अग्नि तो कीड़ों में दो तत्त्वों की प्रमुखता है—पृथ्वी और अग्नि। इसी प्रकार फल, शाक, सब्जी, अन्नादि वनस्पति में एक ही तत्त्व प्रमुख होता है—जल। शेष तत्त्व लुप्त होते हैं। अतः शाकाहार मांस-भक्षण के समतुल्य नहीं है। शाकाहार में जो आपत्ति है वह मांसाहार की अपेक्षा न्यून, लगभग नगण्य ही है। इसमें भी क्रूरता से बचा जाता है—आवश्यकता से अधिक वनस्पति को उपभोगार्थ विछिन्न नहीं किया जाय, जहाँ तक सम्भव हो फलादि का उपभोग वृक्ष से स्वतः पृथक् हो जाने पर किया जाय तो पाप की मात्रा और भी कम हो जायगी। गृहस्थ के लिए भी यह विधान है—वनस्पति से केवल उतना अंश प्राप्त करना कि जितनी न्यूनतम आवश्यकता है—इस विवेचना से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि शाकाहार में भी पाप है पर वह अल्प पाप है। अनिवार्य

और अटलनीय बुराई है। यह पाप मांसाहार के पाप का सहस्रांश भी कदाचित नहीं है। हाँ, है अवश्य, किन्तु नगण्य है।

शाकाहार की महिमा को संसार भर के अनेक महात्माओं, विद्वानों, कलाकारों, प्रबुद्धजनों और विज्ञानियों की स्वीकारोक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मांसाहार के पंक में घिरे रहकर भी वे पंकज के समान उससे निर्लिप्त रहे हैं। उनके शाकाहारी होने के उद्धरण अत्यन्त प्रेरक हैं। पाइथागोरस, प्लॉटीनस, आइजक न्यूटन, लियनार्दो द विंची, महात्मा गाँधी, अल्बर्ट आइंस्टिन, जार्ज बर्नार्ड शॉ, कवि मिल्टन, पॉप, शेले, अरस्तु, सुकरात, टॉल्स्टाय, आदि सभी शाकाहार के न केवल महत्व-प्रतिपादक रहे, अपितु स्वयं शाकाहारी भी थे। आइनस्टाइन ने तो यहाँ तक माना है कि यदि दुनिया शाकाहार को अपना ले तो मानव जाति का भाग्य ही पलट सकता है। सेन्ट मेथ्यू व सेंट पॉल मांसाहार को धार्मिक पतन मानते हैं तो चाणक्य के अनुसार मांस भक्षी जन इस पृथ्वी के व्यर्थ बोझ हैं।

मांसाहार-त्याग विश्व की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गयी है। इसकी पूर्ति में दुराग्रह, दुरभिसंधियों और भ्रान्तियों की बाधाएँ हैं, किन्तु नयी सोच, सज्ञानता, आत्मकल्याण और मानवीय दृष्टिकोण के प्रति अपनाव का भाव सहायक भी हो रहा है। सुखद प्रसंग यही है कि यह पक्ष उत्तरोत्तर प्रबल होता जा रहा है और आशा का रंग गहराता चला जा रहा है। सामिषता की काल रात्रि अब बीतने को है और दया, करुणा, प्राणी मैत्री और अहिंसा की रश्मियों के साथ शाकाहार की ओर अब अधिक दूर नहीं रह गयी है। पथ से भटक जाना तो स्वाभाविक है, किन्तु जानबूझ कर भटके रहना मूर्खता है। शाकाहार की उल्का में मानवता का मार्ग पकड़ लेने में जीवन की सार्थकता है।

मानवता की यह पहचान
शाकाहारी हो इनसान!

■■

३

शुद्ध आहार : शाकाहार

आहार : जीवन का आधार

आहार जीवन की आधारभूत आवश्यकता है। हवा, जल और भोजन—इन तीन महत्त्वपूर्ण अपेक्षाओं में, जीवन के लिए भोजन अधिक गम्भीर स्थिति रखता है। भोजन के बिना कुछ दिनों तक प्राण रक्षा हो जाती है, जल के बिना कुछ घंटों ही, किन्तु हवा के बिना तो कुछ ही पलों तक यह सम्भव है—यह सत्य है, किन्तु हवा और पानी प्राकृतिक रूप में उपलब्ध होते हैं, और उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं—भोजन के सम्बन्ध में मनुष्य की स्वरुचि और विकल्प सक्रिय हो जाता है। यही कारण है कि आहार के नाना रूप प्रचलित हैं। प्राकृतिक रूप में उपलब्ध आहार सम्बन्धी पदार्थों को मनुष्य स्वविवेक से रूपान्तरित कर लेता है। खाद्याखाद्य भी अभेद स्थिति में आ गया है। आज मनुष्य जीने के लिए खाने के स्थान पर खाने के लिए जीने लगा है। आहार का प्रयोजन स्वास्थ्य और शक्ति के स्थान पर स्वाद अधिक महत्ता ग्रहण करता जा रहा है। यह इस सीमा तक बढ़ गया है कि भक्ष्य और अभक्ष्य का विवेक ही पंगु होता जा रहा है।

प्राणी की पहचान ही आहार-विहार-निद्रा-भय और मैथुन की विशेषताओं से की जाती है। ये लक्षण सजीव में प्राप्त होते हैं निर्जीव में नहीं। मनुष्य के लिए तो ये लक्षण और भी अधिक गम्भीर रूप में होते

हैं। आहार को इन विशेषताओं में सर्वप्रमुख और प्रथम स्थान प्राप्त है। जीवन की यह एक अनिवार्यता है। आहार की महत्ता को स्वीकारते हुए इसे विचारकों ने **"जीवन का जीवन"** के रूप में विवेचित और निरूपित किया है। सत्य तो यह है कि मनुष्य का स्वास्थ्य ही नहीं, देह रचना, विकास और उसकी सशक्तता भी आहार पर ही निर्भर करती है। गर्भस्थ शिशु भी उस आहार पर ही निर्भर रहता है, जो उसकी माता द्वारा ग्रहण किया जाता है। जन्म के पश्चात् शारीरिक विकास भी उसी के अनुरूप होगा जैसा आहार उसे मिलेगा। यह सत्य ही है कि शरीर-आहार का ही रूपान्तरण है। जो भोजन हम करते हैं वही देह रूप में आकार ग्रहण करता है। यही कारण है कि दूषित और अनुपयुक्त तथा असंतुलित आहार व्याधियों के कारण बनते हैं, उपयुक्त और अपेक्षित खाद्य ही इन व्याधियों के निराकरण के स्रोत भी बन जाते हैं। ऐसी महत्ता जब जीवन और देह के लिए, नीरोगता और सबलता के लिए, आहार की रहती है तब इसकी ओर अनवधानता रखना कहाँ तक उचित और विवेकसंगत हो सकती है। आहार ही रोग का कारण भी बन जाता है और आहार ही उसकी औषधि भी हो जाता है, तो स्वस्थ जीवन के लिए भला आहार को ध्यातव्य क्यों न माना जाय! यह तथ्य कि 'जैसा खाये अन्न–वैसा बने तन'–नकारा नहीं जा सकता।

शुद्ध और उपयुक्त आहार की तन के लिए भूमिका का प्रतिपादन निम्नलिखित रूप में किया गया है–

- गर्भस्थ शिशु का विकास और पोषण, आहार से ही होता है–शिशु का बालक रूप में, बालक का युवा रूप में और क्रमशः उत्तरोत्तर विकास होता चलता है।
- कोषाणुओं की वृद्धि कर शरीर का अभिवर्धन करना।
- शरीर के लिए अपेक्षित ताप और ऊर्जा उपलब्ध कराना।
- शरीरगत रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप होने वाली क्षति की पूर्ति करना।
- शरीर को शक्तिशाली बनाता है और श्रम के कारण व्यय होने वाली शक्ति की पूर्ति कर उसे शक्तियुक्त बनाये रखता है। इस

प्रकार शरीर को नष्ट होने से बचाता है।

- स्त्री-पुरुष की प्रजनन शक्ति को बनाता और बढ़ाता रहता है।
- माता को स्तनपान कराने की क्षमता देकर शिशु का पोषण करता है।
- शरीर के भार को नियन्त्रित करता है।
- रक्त में अम्लीय और क्षारीय तत्त्वों के समुचित अनुपात निर्वाह द्वारा शरीर को स्वस्थ रखता है।

यदि पहला सुख निरोगी काया है और स्वास्थ्य ही धन है तो इस सुख और धन का दाता आहार ही है—यदि इसे आदर्श रूप में ग्रहण किया जाय।

मानसिक-आध्यात्मिक उपलब्धियों का आहार

आहार की महिमा शारीरिक स्वस्थता और विकास तक ही सीमित न रह कर वह मनुष्य को मानव बनाने का गौरव भी धारण करती है। **'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन'** की जन अवधारणा शत-प्रतिशत रूप में सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य का मानसिक विकास कितना और किस दिशा में होता है—इस का सीधा सम्बन्ध उसके भोजन के प्रकार से होता है। मनुष्य-मनुष्य की मनोवृत्तियों और प्रवृत्तियों के भेद के पीछे यदि कोई रहस्य छिपा हुआ है तो वह यही है कि अन्तर वास्तव में आहार का है। जो जातियाँ मांसाहारी हैं वे हिंसा, क्रूरता, विग्रह की प्रवृत्तियों में आगे रहती हैं। इसके विपरीत जिनका भोजन शाकाहार है वे शान्त, स्नेहपूर्ण, अहिंसक और करुणायुक्त होते हैं। शाकाहार में भी कुछ श्रेणियाँ सम्भव हैं। जिसका आहार जितना ही सात्विक, शुद्ध होगा—वह उतना ही अधिक मानवीय दृष्टिकोण का, मानवोचित व्यवहारशील होगा। उसमें करुणा, क्षमा, उपेक्षा, सद्भाव आदि विशेषताएँ सशक्त और अपेक्षाकृत अधिक प्रबल होती हैं।

जिसका मानसिक विकास जितना अधिक होगा, वह उतने ही उच्च आध्यात्मिक उत्थान पर पहुँच पाता है—यह सिद्धान्त भी सर्वथा असंदिग्ध ही है। आहार से मन का, मन से बुद्धि का, बुद्धि से चिन्तन और विवेक

का और इससे अन्ततः आत्मा का विकास और उत्थान होता है।

अपने आहार को तन और मन का पोषक बनाये रखने के लिए हमें आहार के आकार-प्रकार, उसकी गुणवत्ता की ओर अधिक ध्यान देना होगा। शुद्ध आहार में ही यह सामर्थ्य निहित है। भोजन के इस मूल प्रयोजन को जो विस्मृत कर देते हैं और उसके आनन्द पक्ष को, उसकी स्वादपूर्णता को अधिक महत्ता देने लग जाते हैं—वे भारी भूल करते हैं। ऐसे भ्रमितजन प्रकृति से उपलब्ध शुद्ध और गुणवान आहार पदार्थों का रूप अपने स्वाद-स्वार्थ की साधना में विकृत कर देते हैं और उनको गुणहीन ही नहीं, अपितु हानिकारक भी बना देते हैं। मसालेदार-चटपटे व्यंजनों की यह परिणति रहती है। वे स्वादिष्ट भले ही प्रतीत होते हों—किन्तु वे अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों के जनक बनते हैं। ऐसा आहार उपभोक्ता के लिए सुख-शान्ति का आधार सिद्ध नहीं हो पाता। एक स्थल पर महात्मा गाँधी ने लिखा है—"लाख में निन्यावै हजार नौ सौ निन्यानवै आदमी केवल स्वाद के लिए खाते हैं। वे इसकी परवाह नहीं करते कि खाने के बाद वे बीमार पड़ जाएँगे या अच्छे रहेंगे।" ऐसे तामसिक रूप में जो आहार, स्वाद के लोभ में, परिणत कर दिये जाते हैं उनका, उपभोक्ता के मानसिक विकास और शुद्धता पर विपरीत प्रभाव होता है, उनकी आत्मिक उन्नति का मार्ग भी बाधित हो जाता है।

शुद्धाशुद्ध आहार का विवेक

क्या मनुष्य शुद्ध आहार को अपनाने के क्रम में कोई अपराजेय बाधा अनुभव करता है। भोजन का सुस्वादु रूप जो कृत्रिमता के साथ बना दिया जाता है—अन्ततः हानिकारक है, खाद्य और अखाद्य पदार्थ क्या-क्या हैं? मांसाहार मानवोचित नहीं होता। मानव के लिए मांसाहार अस्वास्थकर और रोगजनक है आदि-आदि अनेक तथ्य ऐसे हैं जिनकी अनभिज्ञता के कारण आज का मनुष्य दिग्भ्रान्त अवस्था में है। ऐसे लोग भी हो सकते हैं कि जो 'आ, बैल मुझे मार'—करते हुए संकटों को आमन्त्रित करते हों या जानबूझ कर कुएँ में गिरते हों—किन्तु इनकी

गणना स्वल्प ही होगी। हमारे आहाराचार के पीछे विवेकहीनता की अपेक्षा अनभिज्ञता का कारण अधिक रहा है। यह भी विचारणीय है कि पीढ़ियों से—शताब्दियों से—मिथ्या आहार का जो सिलसिला चला आ रहा है वह इतना रूढ़ हो गया है कि उसमें मानबोचित आहार-परम्परा का आभास पक्का हो गया है। आवश्यकता इस बात की बलवती हो गयी है कि जन सामान्य को शुद्ध आहार के विषय में सज्ञान किया जाय। इसके लिए अशुद्ध आहार की पहचान कराना और शुद्धाशुद्ध आहार का भेद समझाना भी सहायक सिद्ध होगा।

आहार की शुद्धता-अशुद्धता पर प्रत्येक मत के शास्त्रों में विचार किया गया है। सामिष भोजन का विरोध और निरामिश भोजन का समर्थन करते हुए सिक्खों के धर्मशास्त्र 'गुरु ग्रन्थ साहब' में व्यक्त किया गया है—"रक्त लग जाने से वस्त्र गन्दा हो जाता है, उसमें दाग लग जाते हैं, फिर कैसे माना जाय कि रक्त युक्त मांस खाने से या मांस युक्त रक्त पीने से मनुष्य का मन मैला नहीं होता।"[1] अपने-अपने वातावरण परम्परा के अनुरूप सभी धर्मों के शास्त्र इसी प्रकार शुद्ध व अशुद्ध भोजन का निर्धारण एवं व्याख्या करते हैं, किन्तु जैन धर्म शास्त्रों में इस प्रवृत्ति का व्यापकत्व कदाचित सर्वाधिक मिलता है। कुछ ग्रन्थ तो इसी विषय पर मूलरूप में केन्द्रित हैं। इन शास्त्रों में मुख्य रूप में श्रमणों की आहार विधि विवेचित मिलती है, किन्तु उसे आदर्श मानकर मानवमात्र के लिए उपयुक्त मानने में भी आपत्तिजनक कुछ भी नहीं है। धर्म मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति के योग्य बनाता है और उसमें आहार-शुद्धि की महती भूमिका रहती है। अतः इस विषय का प्रतिपादन धर्मशास्त्रों के लिए स्वाभाविक ही है। मनीषियों की मान्यता है—"आहार की शुद्धि होने पर अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है और अन्तःकरण की शुद्धि से स्मृति अचल हो जाती है।"[2] आहार शुद्धि का आचरण और विवेक ही मनुष्य को 'मानव'

१. जे रक्त लगे कपड़े जामा होत पलीत।
जे रक्त पीवे मांसा तिन क्यों निर्मल चीत ॥

२. आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः।
सत्त्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः ॥

कहलाने का अधिकारी बनाता है; अन्यथा मनुष्य और अन्य प्राणियों (पशु-पक्षी) में विभेद ही क्या रह जायगा।

शुद्ध आहार के लक्षण

जैन धर्माचार के अन्तर्गत शुद्ध आहार का जो विधान है, वस्तुतः वह जितना उपयोगी और लाभप्रद है उतना वह पालनीय और अनुकरणीय बना हुआ नहीं है—इस यथार्थ को आज के सन्दर्भ में स्वीकार कर लेना युक्तियुक्त ही है। किन्तु इस बहाने उसे सर्वथा त्याज्य मान लेने के पीछे भी विवेकशून्यता ही होगी। प्रयत्नपूर्वक उस विधान के अधिकतम सम्भव भाग को आचरण में उतार लेना चाहिए—इसी में हमारा हित निहित है। खाद्य सम्बन्धी समस्या वस्तुतः विश्वस्तर पर ही अत्यन्त विषम हो गयी है। ऐसी स्थिति में उचित अनुचित के विवेक की अपेक्षा जो सुलभ हो—उसी को ग्रहण कर अस्तित्व की रक्षा को प्राथमिकता दी जाने लगी है। किन्तु विचारणीय यह भी तो है कि इस विवशता के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जो अशुद्धाहार की प्रेरणा देते रहते हैं। क्या उन पर विचार कर शुद्ध आहार का मार्ग प्रशस्त किया जाना उपयुक्त नहीं रहेगा। 'मरता—क्या नहीं करता' की बात छोड़ भी दी जाय तो शौकीन क्या-क्या नहीं करता और अज्ञानी क्या-क्या नहीं खा जाता—इस पर तो विचार किया ही जा सकता है। इस हेतु शुद्ध आहार की पहचान कराना अत्यावश्यक है। शुद्ध आहार का प्रतिमान निम्नलिखित लक्षणों में विभक्त कर सुगमतापूर्वक समझा जा सकता है—

नीति न्यायपूर्वक उपार्जित

जैनाचार और परम्परा में शुद्ध आहार के लिए यह सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख विशेषता मानी गयी है। कहा गया है कि "न्याय द्वारा अर्जित धन से प्राप्त अन्न ही शुद्ध अन्न या शुद्ध आहार है।" इस व्याख्या का उपहास करने वाले जन आज के युग में मिल जाएँगे जो कह सकते हैं कि भला उस कर्म का क्या सम्बन्ध जो उस धन को कमाने में किया गया जिससे अन्न सुलभ हुआ हो। उनकी जड़ और ठोस बुद्धि में यह सूक्ष्म

तत्त्व समा भी नहीं सकता, किन्तु है यह सत्य। इन कर्मों का प्रच्छन्न प्रभाव मनुष्य के मन पर अन्न के माध्यम से अवश्य होता है। अन्याय से उपार्जित अन्न त्याज्य है। इसी कारण सिक्खधर्म के प्रवर्तक आदि गुरु नानक साहब ने अत्याचारी जमींदार के यहाँ का आमंत्रण अस्वीकार कर खाती के यहाँ का मेहनत-मजदूरी की कमाई का आहार ग्रहण किया। आहार की शुद्धता पर तो इस बात का भी प्रभाव होता है कि अन्न उपजाने वाले, उसे पीसने वाले, पकाने वाले की चित्तवृत्ति कैसी है। उनकी मनोदशा का प्रभाव अन्न को संस्कारित करता है। यही कारण है कि अनेक परिवारों में रसोइयों का चयन इस दृष्टि की प्रमुखता के साथ किया जाता है कि वे धर्माचारी सच्चरित्र और सदाचारी हों। इस आपदा से बचने के उद्देश्य से अनेक सम्पन्न परिवारों में भी रसोई का जिम्मा स्वयं परिवार की महिलाएँ ही उठाती हैं। अनुचरों के लिए अन्य सेवाकार्य ही रहते हैं।

आहार प्राकृतिक एवं सात्विक हो

मनुष्य के लिए जो प्राकृतिक आहार है, वही उसके लिए लाभप्रद सिद्ध होता है। वनस्पति और वनस्पति जन्य खाद्य ही प्राकृतिक आहार है। शाक, सब्जी, फल, दालें, चावल, अन्नादि इसी श्रेणी में आते हैं। दूध भी वनस्पति का उत्पाद माना जा सकता है। विचारणीय यह है कि क्या इस शाकाहार के साथ-साथ मांसाहार भी मनुष्य के लिए विहित माना जाय? स्पष्टोक्ति यही है कि मांसाहार मनुष्य के लिए नहीं बना। यह उसके लिए प्राकृतिक आहार नहीं है। मानव शरीर की संरचना ही मांसाहारियों जैसी नहीं। न उसके दाँत-नाखून आदि वैसे हैं, न उसकी पाचनशक्ति वैसी है। मांसाहार मनुष्य के लिए न तो पोषक है और न ही आरोग्यवर्धक है। सामिष भोजन तो इसके विपरीत अनेक व्याधियों का कारण बनता है। केवल स्वाद, शौक और अन्ध परम्परावश मनुष्य मांसाहारी बना हुआ है। प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी के लिए सामिष अथवा निरामिष–किसी एक प्रकार के आहार का विधान कर रखा है। प्राणी भी इस नैसर्गिक नियम का उल्लंघन नहीं करते। सिंह घास नहीं खाता, गाय मांस भक्षण नहीं करती। फिर मनुष्य शाकाहार के विधान का दृढ़तापूर्वक पालन क्यों नहीं

करे? क्यों वह सामिष और निरामिष—दोनों वर्गों में अपना नाम अंकित करावे। क्या उसका विवेक प्रकृति विरोधी और पशु से भी गया बीता नहीं है?

यह निश्चित है कि मनुष्य शाकाहारी है, निरामिष भोजी है। शाकाहार ही उसके लिए शुद्ध श्रेणी का आहार है। इस शाकाहार में भी विभिन्न प्रकार के पदार्थ उपलब्ध होते हैं। इनमें सात्विक भी हैं, तो तामसिक खाद्य भी हैं। मनुष्य को विवेकपूर्वक केवल सात्विक पदार्थों को अपना आहार बनाना चाहिए। तामसिक खाद्य चाहे शाकाहार के अन्तर्गत ही क्यों न हों, उन्हें त्याज्य माना जाय—यह परमावश्यक है। उत्तेजना जगाने वाले, काम-क्रोध का उद्दीपन करने वाले पदार्थ वर्जित हैं। प्याज, लहसुन आदि ऐसे ही पदार्थ हैं। तम्बाकू भी वनस्पति है, तामसिक प्रभाव के कारण यह भी ग्राह्य नहीं।

फिर यह भी ध्यातव्य है कि शुद्ध आहार का सेवन कैसे किया जाय। आहार प्राकृतिक भी है, सात्विक भी है किन्तु रुचि हो न हो, आवश्यकता हो, न हो—खूब ठूँस-ठूँस कर खा लिया जाय तो यह आहार अपनी सारी विशेषताओं को पीछे छोड़कर लाभ के स्थान पर हानि का कर्त्ता हो जायगा। "अल्पाहारी—सदा सुखी"—एक गाँठ बाँध लेने योग्य सूक्ति है।

आहार अमृत अवस्था में हो

मृत का अर्थ है मरा हुआ और अमृत का अर्थ है जीवित या प्राणयुक्त। आहार की ग्राह्य अवस्था वही श्रेष्ठतम है जब वह सप्राण है। फल, अनेक सब्जियाँ आदि कच्ची, प्राकृतिक अवस्था में ही सेवन की जाती हैं—उनमें प्राणवत्ता होती है। इस सम्बन्ध में भी यह ध्यान देने योग्य है कि ये वस्तुएँ ताजा रूप में प्रयोग में लाएँ। दूध भी पकाएँ नहीं और दूहकर तत्काल उसी अवस्था में सेवन करें तो यह शुद्धतम आहार होगा। अन्य फसलें चना, मटर, गेहूँ आदि भी यदि हरे-हरे, ताजे काम में लें तो उत्तम है। यह प्राकृत अवस्था अधिक स्वाद, आनन्द, शक्ति और पोषण देती है। जब ये फसलें पककर सूखकर तैयार हो जाती हैं तो भी किसी

सीमा तक इनमें प्राण होता है। गेहूँ, चना, चावल, आदि के दाने वास्तव में बीज हैं। इन्हें बोया व उगाया जा सकता है। किन्तु जब इन दानों को पीसा या भूना, पका लिया जाता है तो ये अमृत नहीं रहते। पकाये हुए या सेंके-तले हुए दाने अंकुरित नहीं हो पाते। यह इनकी निष्प्राणता का प्रमाण है।

तात्विक रूप में संतुलित

आहार शरीर का पोषण करता है। शरीर की क्षति की पूर्ति करना, शरीर का विकास या अभिवर्धन करना, ताप व शक्ति देना, शरीर को स्वस्थ रखना आदि आहार की मूलभूत भूमिकाएँ हैं। जो आहार इस भूमिका का पूर्णतः पालन करने की समर्थता रखे—वह सच्चे अर्थों में शुद्ध आहार है। शरीर की इन विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कतिपय तत्त्वों की अपेक्षा रहती है, यथा प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, जल, स्फोक, खनिज लवण आदि। आहार के माध्यम से ही इन तत्त्वों की आपूर्ति होती है। अतः हमारा आहार ऐसा होना चाहिए जो यह समर्थता रखे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शरीर को जिस मात्रा में जिस तत्व की आवश्यकता रहती है, उतनी मात्रा में वह तत्त्व पहुँचे और उसी आधार पर खाद्यसामग्री के प्रकार व मात्रा का चयन होना चाहिए। यही संतुलित आहार है। आहार के असंतुलित होने की अवस्था में अमुक तत्त्व की न्यूनता या अधिकता के कारण शरीर अपोषित ही नहीं रुग्ण भी हो जाता है। प्रकृति ने इन आवश्यकताओं की पूर्ति कर रखी है। मनुष्य को सही-सही पहचान कर लेनी चाहिए और यथावश्यकता उपभोग करना चाहिए। मौसम की सब्जियों फलों का आहार प्राकृतिक आचरण है। इसमें पीछे नहीं रहना चाहिए। दालें, चपाती, घी, मक्खन, दूध, मट्ठा आदि को शाक-सब्जी, फलादि के साथ सम्मिलित कर लेने से संतुलित आहार की सृष्टि हो जाती है। सामान्यतः यह माना जा सकता है कि आहार में छठा भाग प्रोटीन, खाद्योज, खनिज लवण का हो, दो तिहाई भाग कार्बोहाइड्रेट्स का हो और छठा भाग वसा का हो तो सामान्यतः वह पर्याप्त तात्त्विक संतुलन वाला आहार होगा।

एकाहार और एकपक्व अन्न

सामान्यतः हम भोजन को अति स्वादु और रुचिकर बनाने के लिए अनेक व्यंजनों और खाद्यपदार्थों का एक साथ सेवन करने लगे हैं। यह वैभव और सम्पन्नता का प्रतीक भी हो गया है किन्तु इसके स्थान पर 'एकाहार' या Monodiet अधिक उत्तम है। जैन परम्परा में इसे 'आमिल' कहा गया है और यह पद्धति बहुप्रचलित हो गयी है। एकाहार का विधान यह है कि एक समय में किसी एक खाद्य का ही उपयोग किया जाता है। कभी किसी एक प्रकार के फल से ही आहार कर लिया जाता है तो केवल दूध को ही कभी आहार रूप में अपनाया जाता है। केवल मट्ठा अथवा केवल एक प्रकार के अन्न को ही किसी समय का भोजन स्वीकार कर लिया जाता है। आमिल व्रत की महिमा का भी जैनशास्त्रों में बहुत बखान मिलता है। यह आमिल या आयंबिल कुछ रोगों के लिए चिकित्सा की सफल पद्धति भी सिद्ध हुई है। पाचन और स्वास्थ्य के लिए 'एकाहार' बड़ा महत्वपूर्ण माना गया है। यह तो एक प्रकार का तप ही है जिसमें भोजन के स्वाद या रसों का निग्रह होता है। घृत, दुग्ध वर्जित, अन्य प्रियरस भी वर्जित, यहाँ तक कि नमक का भी परित्याग कर दिया जाता है। मात्र अन्न ग्रहण किया जाता है। आवश्यकता होने पर आहार ग्रहण करते समय अन्न को पानी में भिगोया जा सकता है। सत्तू, चने (भुने हुए), उबले बाकले, चावल आदि सामग्री ही इस व्रत में ग्राह्य मानी जाती है।

इसी प्रकार कच्चा आहार ही अधिक उत्तम माना गया है, किन्तु बहुत आवश्यक होने पर उसे पकाया भी जा सकता है। ऐसी स्थिति में एक बार का पकाया हुआ आहार ही ग्रहण करना चाहिए। भिन्न-भिन्न पद्धतियों से अनेक बार भी पकाया जाता है। कभी बाफ कर सेंका जाता है, कभी सेंककर या बाफ कर तला जाता है, कभी तलकर फिर बाफा जाता है। बाफल्य, बेसन गट्टा, समोसा, कचौड़ी, पकौड़ी की कढ़ी, पुलाव आदि इसी के उदाहरण हैं। हरी सब्जी जैसे गुणवान पदार्थों को भी स्वाद के लोभ में पहले तलकर फिर पकाया जाता है। पालक को बाफ-पीसकर

फिर से पकाया जाता है। इससे आहार की पौष्टिकता बहुत कम, नहीं के समान रह जाती है। उसके विटामिन तो समाप्त ही हो जाते हैं।

अशुद्ध आहार की पहचान

जैनाचार एवं जैनशास्त्रों में अशुद्ध आहार का तीव्र विरोध पाया जाता है। हिंसक आहार अशुद्ध आहार माना गया है। सामिष भोजन इसी श्रेणी का है। जैन परम्परा में तो अहिंसा को ही परमधर्म स्वीकार किया गया है। जैनाचार में अहिंसा का जितना महत्व है उतना कदाचित अन्य किसी धर्म, मत या परम्परा में नहीं। अहिंसा का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ व्यावहारिक पालन इस धर्माचार की आधारभूत विशेषता है। ऐसी स्थिति में सामिष आहार की तो इसमें कल्पना भी नहीं की जा सकती। सूत्र कृतांग में उल्लेख है—"ज्ञानी होने का सार यही है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि अहिंसामूलक समता ही धर्म का सार है।"[1] अहिंसामूलक समता की चर्चा जहाँ आती है वहाँ यह तथ्य प्रमुख हो जाता है कि जैन धर्म अपने अवलम्बियों को यह मानने को प्रेरित करता है कि जैसे हम हैं, वैसे ही अन्य सभी प्राणी हैं। हम जीवित रहना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते। ऐसी ही कामना सभी की रहती है। "जैसा मैं हूँ, वैसे ही सभी प्राणी हैं, और जैसे ये सभी प्राणी हैं वैसा ही मैं हूँ—ऐसा समझ कर न किसी का वध करे, न दूसरे से कराए।"[2] इस प्रकार न केवल स्वयं प्राण हनन करना ही हिंसा है, यदि कोई किसी को किसी प्राणी का घात करने को प्रेरित भी करता है जो वह स्वयं द्वारा की गयी हिंसा के समान ही है। यह कहना कि हम मांसाहार लेते तो हैं, किन्तु प्राणी-वध नहीं करते, वध तो कसाई करता है—ठीक नहीं। इससे वह हिंसक होने से दब नहीं सकता। जैन धर्म में अहिंसक होने के लिए आवश्यक है कि वह स्वयं हिंसा न करे, दूसरों से न करवाए

---

१. एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण।
अहिंसा समयं चेव एतावंतं वियाणिया ॥

२. यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अतान उपमंकत्वा, न हनेय्य न घातये ॥ —सुत्तनिपात

और हिंसा का अनुमोदन न करे। यही नहीं अहिंसक तो वह है जो मनसा, वाचा, कर्मणा हिंसा से परे है। किसी को मारने, कष्ट पहुँचाने, हानि करने का विचार भी मन में आए तो वह हिंसा है। ऐसे धर्माचार में भला मांसाहार के शुद्ध आहार माने जाने की कल्पना भी कैसे की जा सकती है।

मांसाहार तो दूर रहा—जिन पदार्थों के सेवन में जीव हिंसा की आशंका रहती है—उनके निरामिष होने पर भी वे शुद्ध आहार की श्रेणी में नहीं आ पाते हैं। इस दृष्टि से वनस्पति और अन्य खाद्य भी शुद्ध अथवा अशुद्ध माने गये हैं। वनस्पति में भी जीव माना गया है, किन्तु इस दृष्टि से वनस्पति के दो वर्ग किये गये हैं। एक वर्ग 'प्रत्येक वनस्पति' और दूसरा 'अनन्तकाय वनस्पति' कहलाता है। पहले वर्ग की 'प्रत्येक वनस्पति' में एक जीव होता है, जबकि अन्ततकाय वनस्पति में जीवों की संख्या अनन्त होती है अतः वह खाद्य रूप में अशुद्ध और वर्जित मानी गयी है। बहुबीजीय शाक (टमाटर, बैंगन, भिण्डी आदि) भी अशुद्ध मानी गयी हैं। इसी आधार पर मदिरा, मांस, गूलर, अंजीर, बिना छना पानी, रात में बना भोजन, रात में पीसे गये आटे का भोजन, अचार, मुरब्बा, सिरका, पेठा, रायता, खट्टे दही की जावन से तैयार किया गया दही, मक्खन, डबल रोटी आदि अशुद्ध आहार माने गये हैं।

कन्द भाजियों को भी इसी प्रकार अशुद्ध आहार माना गया है। जिन वनस्पतियों पर धूप फैलती है। वे कीटाणुरहित होती हैं, किन्तु जो भूमि के अन्दर होती हैं, उनमें धूप के अभाव से बहुत कीटाणु होते हैं। अन्धेरे में कीटाणु विकसित भी अधिक होते हैं। ऐसे खाद्यों के सेवन में हिंसा का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अस्तित्व मान कर अधोभूमि उत्पन्न वनस्पतियों को भी वर्जित माना गया है।

मिथ्या आहार से बचिये

एकाहार के विपरीत संयुक्ताहार माना गया है। एक साथ अनेक व्यंजन चाहे शुद्धाहार के ही हों—उपयुक्त नहीं माने गये हैं। इसी प्रकार अनमेल या बेमेल आहारों के लिए भी वर्जना की गयी है। कुछ खाद्य ऐसे

हैं जो स्वयं के अकेले प्रयोग में तो शुभ हैं, किन्तु किसी अमुक अन्य पदार्थ के सेवन में हानिकारक प्रतिक्रिया कर देते हैं। ऐसे दो अनमेल पदार्थों का सेवन वर्जित किया गया है; यथा—मधु और घृत, दूध और नमक इत्यादि। ये मिथ्या आहार की श्रेणी में आने वाले आहार हैं। मिथ्या आहार के अन्तर्गत मिर्च, मसाले, तेल आदि की गणना भी होती है। ये शरीर के अवयवों पर तो विपरीत प्रभाव करते ही हैं, इनसे अम्लीयता अनावश्यक रूप से बढ़ती है जो अनेक रोगों का कारण बन जाती है। इनका सर्वथा त्याग यदि सम्भव न भी हो तो इनकी मात्रा अत्यल्प अवश्य कर ली जानी चाहिए। भोजन में जो नमक प्रयुक्त होता है, वस्तुतः वह बाहरी नमक है जो हमारी आवश्यकता से अतिरिक्त भी है और वह हमारे शरीर में समाहित भी नहीं होता। पसीना आदि के रूप में यह वापस बाहर आ जाता है। शरीर में प्रयुक्त नमक तो वही होता है, जो अन्य खाद्य सामग्रियों में तत्त्व रूप में विद्यमान रहता है। यह बाहरी नमक तो मात्र स्वाद के प्रयोजन से होता है। यह स्वाद की प्रवृत्ति रोगजनक होती है और दौर्बल्य भी इसका एक दुष्परिणाम होता है। यह बाहरी नमक जितना ही कम प्रयुक्त किया जाय, उतना ही उत्तम है।

मिताहार का महात्म्य

शुद्ध आहार तक सीमित रह जाने का अर्थ धर्मानुयन तो हो जाता है, किन्तु मात्र इतना पर्याप्त नहीं। धर्माचार शुद्धता के साथ-साथ कतिपय अन्य मर्यादाएँ भी आहारार्थ निर्धारित करता है। रात्रि भोजन को दृढ़तापूर्वक निषिद्ध माना जाना चाहिए। आयुर्वेद भी इसका समर्थक है कि सूर्यास्त से पूर्व ही भोजन कर लेना उपयुक्त रहता है। हृदय कमल और उदर कमल शरीर में ये दो कमल हैं जो सूर्यास्त के अनन्तर मुरझा जाते हैं। यह भी व्यावहारिक तथ्य है कि अन्धकार में भोजन में कुछ छोटे-छोटे जीव आ जाते हैं। यदि प्रकाश की व्यवस्था रहे तो यह आशंका और अभिवर्धित हो जाती है। प्रकाश अधिक कीटों को आमन्त्रित कर लेता है।

जैन धर्म इसी प्रकार एक दिन में केवल एक समय और अल्प आहार ग्रहण करने को उत्तम मानता है और एतदनुसार ही निर्देश करता

है। भगवान महावीर ने 'हित-मित भोजन' का जो आदर्श स्थापित किया है उसका यही प्रयोजन है कि हित अर्थात् शुद्ध होने के साथ-साथ आहार की मात्रा भी सीमित ही रहनी चाहिए। ऐसा आहार आरोग्य का आधार होता है। आचार्य भद्रबाहु का मत है—"जो व्यक्ति हितभोजी, मितभोजी एवं अल्पभोजी होते हैं, उन्हें चिकित्सा व वैद्यों की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने वैद्य स्वयं होते हैं।[1] अकाल में अन्नाभाव के कारण जितने लोग काल के ग्रास हो जाते हैं, उतने ही सुकाल में अधिक आहार से मर जाते हैं। चिकित्सकों और वैज्ञानिकों का यह मत भी रहा है कि व्यक्ति जितनी मात्रा पचा सकता है, उससे तीन गुनी मात्रा में आहार ग्रहण कर लेता है। आचार्य सोमदेव के शब्दों में—"जो कम खाता है, वह बहुत खा लेता है। स्वस्थता और नीरोगता का आधार होना उपयुक्त आहार की मूलभूत विशेषता है।"

आचार्य उमा स्वाति की धारणा बड़ी सुन्दर है। आहार के आदर्श स्वरूप को उन्होंने अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित करते हुए कहा है—

जो काल, क्षेत्र, मात्रा, आत्मा का हित, द्रव्य की गुरुता-लघुता एवं अपने बल, क्षमता का विचार कर भोजन करता है, उसे औषधि की अपेक्षा नहीं रहती—

कालं क्षेत्र मात्रां स्वात्म्यं द्रव्यगुरु लाघवं स्वबलम्।
ज्ञात्वा योऽभ्यवाहार्यः भुङ्क्ते किं भेषजै स्तस्य ॥

■■

---

१. हियाहारा, मियाहारा, अप्पाहारा जेनरा।
न ते विजातिगच्छिति, अप्पाण ते तिगिच्छगा ॥

४

मांसाहार : व्याधियों का आगार

चाहे भ्रान्ति ही हो, किन्तु यह एक बहुप्रचलित अवधारणा बनी हुई है कि शाकाहार की अपेक्षा मांसाहार अधिक ऊर्जाप्रद और अधिक पौष्टिक है। यदि एक मिथ्या को भी सत्य के रूप में सौ बार दुहराया जाय तो वह सत्य का ही स्थान ले लेता है—ऐसी मान्यता अनुभव के आधार पर बन गयी है। मांस समर्थक और मांसाहार प्रियजन इसकी महिमा के बखान में कोई कृपणता नहीं बरतते। वे तो शुद्ध, सात्विक निरामिष आहार को पशुओं का आहार घोषित करते हुए इसे तुच्छ बताते हैं और कहते हैं—"मांस बिना सब घास रसोई।" आज सर्वत्र मांसाहार का बोलबाला है। ऐसा तीव्र आकर्षण है इस आहार के प्रति कि असंख्य निरामिष जन बिना कुछ सोचे-समझे ही मर्यादा लांघकर शाकाहार के पाले से मांसाहार के पाले में कूदते जा रहे हैं। और साँस रोककर 'मांस-मछली-अंडा-अंडा—मांस-मछली अंडा-अंडा' की रट लगाते जा रहे हैं। कबड्डी के इस खेल का आनन्द उन्हें तब आएगा जब उस पाले के खिलाड़ी हृदयाघात, केंसर, डायबिटीज, अल्सर आदि एक साथ उन पर टूट पड़ेंगे और पूरी शक्ति से दबोच लेंगे। फिर तो यह खिलाड़ी अपने पाले में आने की जी तोड़ चेष्टा करेगा, पाले की सीमा-रेखा को भी उसे छूने नहीं दिया जायेगा। उस पाले के खिलाड़ी भी अपनी पकड़ को तभी शिथिल करेंगे जब उसका दम टूट जायेगा और निर्णायक सीटी बजाकर

उसे मृत घोषित कर देगा। सारा खेल ही उसके लिए समाप्त हो जायगा। उसका स्थान वही रह जायगा जहाँ उसके पाले के पूर्वमृत खिलाड़ी पहले से बैठे हैं।

अब सद्बुद्धि आयी भी तो क्या आई। का बरखा जब कृषि सुखाने। चिड़िया खेत चुग जाय उसके पूर्व ही सतर्क और सावधानीपूर्वक रक्षा कर लेने वाला ही फसल लेकर घर लौटता है। यही आचरण आहार विवेक की दिशा में अपेक्षित है। 'स्टेटस सिंबल' मानकर अनेक फैशन-परस्त युवजन सामिषता की ओर झुकते चले जा रहे हैं, किन्तु यह विवेक और शुद्ध निर्णय का प्रतीक नहीं है। जीवन-मरण का प्रश्न जिससे जुड़ा हो उसका निर्णय दिखावे, विलासप्रियता और आधुनिकता के आधार पर किया जाय—यह सर्वथा घातक आचरण होगा।

सेना में मांसाहार का प्रचलन रहता है। मान्यता है कि मांसाहार ही सैनिक में युद्ध का साहस और पराक्रम जगाता है। किन्तु एक नायक सदा से ही निरामिष भोजन करता था। तत्कालीन फौजी अफसर एक अंग्रेज था। उसने इसे आपत्तिजनक माना और उसका चालान कर दिया। कहा कि घास-पात खाकर वह जंग कैसे लड़ेगा? नायक ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि शाकाहार मांसाहार की अपेक्षा अधिक ताकतवर होता है। मेरा दंगल एक साथ दो मांसाहारियों से करवा दीजिए। यदि मैं हार गया तो सामिषभोजी हो जाऊंगा और जीत गया तो मेरी शाकाहार की मात्रा बढ़ा दीजिये। दंगल हुआ। शाकाहारी नायक की ही विजय होनी थी। उसे सेना में रहकर शाकाहारी बने रहने की अनुमति मिल गयी। ये शाकाहारी थे—नायक यदुनाथ सिंह जिन्हें १९४८ के काश्मीर मोर्चे पर अद्भुत पराक्रम दिखाने के उपलक्ष्य में 'परमवीर चक्र' से विभूषित किया गया था।

पेंशन के दफ्तर में एक वयोवृद्ध किन्तु हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ सरदारजी आये। खूब स्फूर्ति, आँखों से ओज निकलता हुआ, दाढ़ी मूँछ का एक-एक बाल श्वेत, किन्तु मुख पर स्वास्थ्य की लालिमा, चौड़ा सीना और सीधी गर्दन—अद्भुत देह-यष्टि थी इन सरदारजी की। एक वृद्ध ने पूछा कि आप कौन से महकमे से रिटायर हुए। सरदारजी ने कहा—नहीं जी मैंने तो सरकारी नौकरी की ही नहीं। मैं तो अपने पोते की पेंशन लेने आया हूँ।

मांस मछली-अंडा खूब खाया उसने, पर अब तो वो बेचारा बिस्तर से हिल भी नहीं सकता। इस प्रश्न के उत्तर में तो उसके पिता को भेज देते, आपने क्यों तकलीफ की—सरदारजी ने कहा कि उसे तो प्रभु को प्यारे हुए भी बरसों हो गये। खाया-पिया तो उसने भी बहुत पर अधिक उमर न पा सका। जब सरदारजी से पूछा गया कि उनकी इतनी अच्छी सेहत का राज क्या है? वे क्या खाते हैं? तो ज्ञात हुआ वर्षों से उनका अभ्यास हरी-सब्जियाँ खाने का है। उबली हुई सब्जियाँ—बस यही उनका आहार था। एक और सरदार जी हैं जो ६५ वर्षीय आयु में भी पूर्ण स्वस्थ है। बसों में घूमते हैं, बिना चश्मे के समाचारपत्र पढ़ते हैं। कुछ दाँत खिर गये थे—वे भी फिर से नये निकल आये हैं। ये हैं सरदार सुजान सिंह कोहली जो सर्वथा नीरोग और बलवान हैं और शुद्ध शाकाहारी हैं। यू.एस.ए. वर्ल्ड कराटे चेम्पियनशिप के विजेता रिजली आबेल और साइकल-चालन में विश्व कीर्तिमान स्थापित करने वाले अमरीकी एस्टेलग्रे भी शाकाहारी हैं। कुश्ती जगत के नायक प्रो. राममूर्ति भी शुद्ध शाकाहारी थे। इन दृष्टान्तों से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि शाकाहार की गुणवत्ता कितनी उच्चस्तरीय है। प्रसिद्ध आहार-विज्ञानी फ्रेएलिस और प्रो. जे. डब्ल्यू. टी डिकरसन ने वाजे तौर पर अपना ख्याल रजू किया है कि शाकाहार की पोषण क्षमता को अब तक काफी अवमूल्यित और गौण करके सोचा गया है। यह भी मांसाहारियों की दुरिभसंधि की ही एक कड़ी है। मांसाहार से एक कैलोरी ऊर्जा प्राप्त करने के लिए पशु वनस्पति आहार के रूप में सात कैलोरी खिलानी पड़ती है। फिर सीधे ही वनस्पतियों से पूरी ऊर्जा क्यों न ग्रहण की जाय।

अरस्तु, चार्ल्स डारविन, आइन्स्टीन, टॉलस्टॉय, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, महात्मा गाँधी, सी.वी. रमण, बेंजामिन फ्रैंकलिन, सर आयजक न्यूटन, लियोनार्दो द विंची, शेक्सपीयर, शैली, कवीन्द्र रवीन्द्र, अज्ञेय और न जाने कितने अन्य विश्वविख्यात चिन्तकों, दार्शनिकों, साहित्यिकों ने शाकाहार की विशेषताओं को समझा, उनका समर्थन और प्रचार किया है। हमने मांसाहार को चमक-दमक भरे मिथ्या प्रचार और भ्रान्तधारणाओं के वशीभूत अपनी आर्थिक सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और

अन्य अनेक हानियाँ कर ली हैं। अब समय आ गया है जब हमें सँभल जाना चाहिए। सवेरे का भूला सन्ध्या को ही घर लौट आए तो उसे भूला नहीं कहा जाता। भूल-सुधार तो जब ज्ञात हो, तभी कर लेना चाहिए। तब भी सचेत न होना आत्मघात करने के समान ही है। हमें यह सचाई गाँठ बाँध लेनी होगी कि मांसाहार पौष्टिकता के क्षेत्र में शाकाहार के समक्ष कहीं टिकता ही नहीं।

मानव देह को पोषण प्रदान करने की भूमिका आहार की ही होती है। वही हमारे शरीर में होने वाली क्षतियों की पूर्ति करता है, कोशिकाओं की रचना करता है। आहार ही हमें स्वस्थ एवं सक्रिय रखता है, वही आवश्यक ताप की सर्जना करता है और उसी से शरीर के लिए आवश्यक तत्त्व प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, फाइबर, खनिज, लवण आदि की आपूर्ति होती है। आहार ही शरीर की रोग निरोधक शक्तियों की रचना और उनका अभिवर्धन करता है। आशा की यह भूमिका तभी निभ सकती है जब सम्बन्धित आहार अपने आप में परिपूर्ण हो, उसमें सभी तत्त्व यथावश्यकता विद्यमान हों। शाकाहार का जहाँ तक प्रश्न है वह इस दृष्टि से परिपूर्ण ही नहीं तात्त्विक रूप में समृद्ध भी है। मांसाहार के तत्त्वों की पर्याप्तता तो संदिग्ध है—उसमें सभी तत्त्वों की उपस्थिति भी नहीं है। सामिष भोज्य पदार्थों में न पर्याप्त खनिज हैं, न कार्बोहाइड्रेट हैं, न ही विटामिन हैं। ऐसी स्थिति में इसे सम्पूर्ण आहार का दर्जा नहीं दिया जा सकता। मात्र मांसाहार पर निर्भर रहकर किसी व्यक्ति के लिए स्वस्थ और दीर्घजीवन संभव नहीं है। चाहे कोई शाकाहार हो 'घास-पात' कहकर उसका उपहास कर ले, किन्तु जितनी ऊर्जा यह घास-पात दे देता है। उतनी उसका साध्य और उपास्य मांसाहार नहीं दे पाता।

प्रोटीन देह के विकास और उसकी पुनर्संरचना के लिए एक अनिवार्य तत्त्व है। अब तो यह जग जाहिर हो गया है कि यह महत्त्वपूर्ण तत्त्व शाकाहार में मांसाहार की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में मिल जाता है। प्रोटीन को भी प्रथम और द्वितीय दो श्रेणियों में रखा गया है। ऐसी मान्यता नहीं है कि प्रथम श्रेणी का प्रोटीन पशु-उत्पादों (मांस, मछली, अंडा, दूध आदि) में रहता है और वनस्पतियों में पाया जाने वाला प्रोटीन

द्वितीय श्रेणी का है। किन्तु दोनों प्रणालियों के खाद्य पदार्थों का जो वैज्ञानिक तात्त्विक विश्लेषण हुआ है—उसके अनुसार यह अवधारणा भी मिथ्या सिद्ध हुई है। यदि प्रोटीन की दो श्रेणियाँ मान भी ली जाय तो प्रथम श्रेणी का प्रोटीन ही शाकाहारी पदार्थों में माना जायगा।

तत्त्व विश्लेषण तालिका (प्रति १०० ग्राम)

आहार सामग्री	प्रोटीन ग्राम	वसा ग्राम	कार्बोडाइ. ग्राम	फाइबर ग्राम	खनिज ग्राम	उर्जा कैलोरी
अंडा	१३.३	१३.३	×	×	१	१७३
मांस	२२.६	३.६	×	×	१.१	१९४
मछली	८.६	०.२-१६.४	×		०-२७५	५६-४१३
अनाज/चावल			५०-७०	१.२५-४	१-६	३३०-३६३
दलहन	२०-२५		५०-६०	२-५	२-५	३२५-३६०
सोयाबीन	४३.२				४.६	४३२
तरबूज के बीज	३४.१	५२				
बादाम		५८.६				६५५
अखरोट		६४.५				६८७
किशमिश/खजूर			७४.६			३०८-३१७
सिंघाड़ा			६८.६			३३०
घी-तेल		१००				
तिल		४४			५.२	५६३
नारियल		६२		६.६		६६२
गन्ने का रस			६६.४			
शहद			७७.५			
मूँगफली	२६.२	३६.८	२६.७	३.१	२.५	५७०

विशेष—उपर्युक्त तालिका में केवल विचारणीय तत्त्वों की मात्रा ही अंकित की गयी है। जो तत्त्व जहाँ शून्य है वहाँ × अंकित हैं। रिक्त स्थानों पर मात्रा नगण्य/अविचारणीय है।

पोषक तत्त्वों में प्रोटीन की महत्ता अधिक स्वीकृत एवं मान्य है। इस दृष्टि से तुलना करें तो शाकाहार मांसाहार की अपेक्षा पीछे नहीं है। बहुत

प्रचार था कि अंडा प्रोटीन तत्त्व का भण्डार है—वह भी भ्रान्त सिद्ध हुआ। अंडे से लगभग डेढ़ी मात्रा में प्रोटीन विभिन्न दालों में उपलब्ध हो जाता है। हाँ दलहन को इस दृष्टि से मांस के समान भले ही कहा जाय (दालों में कुछ अधिक है), किन्तु अंडे के साढ़े तीन गुना और मांस से दुगुना प्रोटीन सोयाबीन में होता है। सोयाबीन में तो उसके भार का लगभग आधा प्रोटीन ही होता है। कहा जाय तो सोयाबीन को प्रोटीन का भंडार कहा जा सकता है। अंडे की अपेक्षा ढाई गुना प्रोटीन तो तरबूज के बीजों में ही मिल जाता है।

वसा या चिकनाई (फैट) भी आहार का एक आवश्यक तत्त्व है। मांस, मछली में तो इसकी मात्रा नगण्य सी है। अंडे में वसा की मात्रा १२.३% अवश्य होती है, किन्तु अन्य शाकाहारी पदार्थों में इसकी मात्रा और भी अधिक होती है। घी-तेल तो शत-प्रतिशत वसा ही हैं। अंडे की अपेक्षा नारियल में लगभग ५ गुनी, मूंगफली में ढाई गुनी, बादाम में साढ़े चार गुनी, अखरोट में ५ गुनी वसा की मात्रा होती है। कार्बोहाइड्रेट्स में तो तुलना का प्रश्न ही इस कारण नहीं होता कि मांसाहारी पदार्थों में यह तत्त्व सर्वथा शून्य होता है और शाकाहारी पदार्थ इस तत्त्व में अत्यन्त विपुलता के साथ सम्पन्न होते हैं।

फाइबर दालों, अनाजों के छिलकों में होता है। इस तत्त्व की प्रमुख उपादेयता यह है कि यह तत्त्व शरीर में रोगों से संघर्ष करने की क्षमता बढ़ाता है। आश्चर्य है कि मांसाहारी पदार्थों में इसका सर्वथा लोप होने की स्थिति में भी उन्हें क्योंकर स्वास्थ्यकर माना जाता है। खनिजों से देह के विभिन्न अवयवों का गठन सुदृढ़ होता है और शक्ति बढ़ती है। मछली को छोड़कर शेष सामिष पदार्थों में इसकी मात्रा नगण्य सी होती है। अंडे और मांस की अपेक्षा तो मूँगफली में ही खनिज मात्रा ढाई गुनी होती है। मछली की अनेक नस्लें होती हैं। अनेक जाति की मछलियों में तो खनिज लगभग शून्यवत ही होता है, हाँ मछली की कुछ जातियाँ ऐसी अवश्य हैं जो खनिज तत्त्व में बहुत समृद्ध हैं। सोयाबीन में अंडे की अपेक्षा साढ़े चार गुना खनिज तत्त्व पाया जाता है। तिल में तो इसकी मात्रा पाँच गुने से भी अधिक रहती है।

जहाँ तक वसा का प्रश्न है अंडे में इसकी मात्रा अपेक्षाकृत ठीक-ठीक अवश्य होती है, किन्तु प्रकार में यह वसा ऐसी होती है जो अधिक मात्रा में कोलेस्टरोल बनाती है। परिणामतः रक्त वाहिनियों में इनका जमाव हो जाता है और रक्तचाप बढ़ जाता है। इससे हृदय रोग हो जाता है और हृदयाघात की आशंका बनी रहती है। इस प्रकार का संकट शाकाहारी पदार्थों के वसा में अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। कारण यही है कि इन में प्राप्त वसा की मात्रा चाहे अधिक ही क्यों न हो, उससे कोलेस्टरोल कम मात्रा में बनता है।

एक समय था जब दूध की अपेक्षा अंडा-आहार को अधिक उत्तम माना जाता था, किन्तु यह धारणा भी सर्वथा भ्रान्त सिद्ध हो गयी है। मांसाहार में पोषक तत्त्वों का विवेचन-विश्लेषण किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि न तो इसमें समस्त अवयव हैं और न ही जो तत्त्व हैं वे पर्याप्त मात्रा में हैं। उदाहरण के लिए अंडे की अपेक्षा मूँगफली अधिक पौष्टिक है। इसमें सभी तत्त्व समुचित संतुलन के साथ उपलब्ध हो जाते हैं। इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, फाइबर, खनिज आदि सभी तत्त्व उल्लेखनीय मात्रा में विद्यमान होते हैं।

भोजन चाहे सामिष हो, चाहे निरामिष—उसका उद्देश्य शरीर को ऊर्जा उपलब्ध कराना भी होता है। हम जो काम-काज करते हैं, जो आन्तरिक शारीरिक प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं—सभी को ऊर्जा की अपेक्षा रहती है जो आहार से उपलब्ध होती है। अच्छे आहार के लिए इस कारण यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह अधिकतम ऊर्जा की आपूर्ति भी करे। इस ऊर्जा की माप या इकाई कैलोरी रहती है। यदि १० ग्राम की मात्रा विभिन्न खाद्यों की मानकर उनसे प्राप्त ऊर्जा का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो यह मानना होगा अंडे से जहाँ १७३ कैलोरी ऊर्जा मिलती है, वहाँ मूँगफली से ५७० कैलोरी ऊर्जा उपलब्ध हो जाती है। मांस से तो अंडे की अपेक्षा भी कम ऊर्जा (११४) मिलती है। अखरोट सबसे अधिक ऊर्जा देता है (६८७) तिल जैसा पदार्थ ही ५६३ ऊर्जा दे देता है जो मांस की अपेक्षा पाँच गुना होती है।

हमारे स्वास्थ्य और नीरोग रहने के लिए विटामिन की भी गम्भीर

आवश्यकता रहती है। और विटामिन भी शाकाहार से ही प्राप्त होते हैं। सामिष आहार तो इस दृष्टि से भी शून्य ही होते हैं विटामिन-ए हरी सब्जियों में, गाजर, टमाटर में मिलता है। मूली की पत्ती में विशेष रूप से इसकी बहुतायत रहती है। विटामिन-बी की उपस्थिति अनाज और सब्जियों में रहती है। विटामिन-सी नीबू, अमरूद, आँवला, संतरा, मौसमी आदि में और विटामिन-डी वनस्पतियों और पशुओं से प्राप्त निरामिष खाद्य—दोनों में मिलता है। सूर्य की किरणों में यह प्रचुरता के साथ मिलता है। विटामिन-ई घी, मक्खन आदि में और विटामिन-के (K) हरी सब्जियों में मिलता है। हरी सब्जियों से अनेक प्रकार के विटामिन मिल जाते हैं—ये शाकाहार हैं, जबकि मांसाहार में विटामिन नहीं होते।

पौष्टिकता की तुलना पर जब मांसाहार और शाकाहार को रखा जाय तो शाकाहार का पलड़ा जमीन को छोड़ता ही नहीं। अब सूर्य की धूप की भाँति यह स्पष्ट हो गया है कि मांसाहार हानिकारक है, दुर्बलता और रोगों का घर है। इसके विपरीत शाकाहार की महत्ता भी स्थिर होती चली जा रही है। पश्चिमी देशों में भी अगणित मांसाहारी इस आहार का परित्याग करते चले जा रहे हैं। यही नहीं, ब्रिटेन में तो अब शाकाहार की प्रवृत्ति को आधुनिकता की पहचान माना जाने लगा है। वहाँ दस लाख लोग पूर्ण शाकाहारी हो चुके हैं। शाकाहारी व्यंजनों का प्रचलन भी वहाँ बढ़ता जा रहा है। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने बहुत समयपूर्व ही लिखा था—"हम मांस खाने वाले चलती-फिरती कब्रें हैं जिनमें वध किये हुए जानवरों की लाशें दफन हैं, जिन्हें हमारे स्वाद के चाव के लिए मारा गया है।" अब जाकर इस कथन में लोगों को विश्वास होने लगा है और वे कथन के ध्वन्यार्थ को समझने लगे हैं। बर्नार्ड शॉ के बहुत रुग्ण हो जाने पर चिकित्सक ने कहा था कि यदि उन्होंने मांसाहार न किया तो मर जाएँगे। बर्नार्ड शॉ ने कहा—"मैं मर जाना अधिक पसन्द करूँगा, किन्तु यदि मैं बच गया तो तुम शाकाहारी हो जाओगे।" वास्तव में वे तो उसी समय बच गये, किन्तु अब जाकर अनेकजन शाकाहारी होने लगे हैं। अमरीका में पाँच करोड़ से भी अधिक लोग शाकाहारी हो गये हैं। भारत का भाग्योदय न जाने कब होगा! कब हमारी नयी पीढ़ी के नव प्रवेशार्थी जागेंगे और समझने लगेंगे कि मांसाहार का क्षेत्र निषिद्ध है—उसमें विचरण

करने के परिणाम हानिकारक ही नहीं घातक भी हैं। कब लौट कर आएंगे शाकाहारसदन के गृहस्थजन जो मांसाहार भवन में अतिथि रूप में गये हुए हैं। अहिंसा-प्रधान भारत को इतनी आशा तो रखनी ही चाहिए कि दिग्भ्रमित पीढ़ी हिंसा से अहिंसा की ओर उन्मुख होकर शाकाहार की ओर मुड़ेगी ही—आज नहीं तो कल और अधिक दूर न होगा वह कल जब लड़खड़ाती पीढ़ी जाएगी सँभल। काश! शाकाहार का पलड़ा कभी ऊपर न उठे!!

■■

५

शाकाहारी अंडा : एक वंचनापूर्ण भ्रान्ति

जब रसना मन से आगे बढ़ जाती है तो अनेक अनर्थ होने लग जाते हैं। जीभ पर नियन्त्रण होना अत्यावश्यक है। कहीं तो यह अनर्गल वाणी द्वारा विग्रह खड़े कर देती है और कहीं स्वाद लोलुप बनाकर मनुष्यों से वे कृत्य भी करवा देती है कि जो उनके लिए अकरणीय हैं। अभक्ष्य पदार्थ भी इसी कारण खाद्य-सूची में स्थान पाने लग गये हैं। अंडा-आहार इसका एक जीवन्त उदाहरण है। अंडा वास्तव में प्रजनन-चक्र की एक अवस्था विशेष है। सन्तानोत्पत्ति लक्ष्य का यह एक साधन है, यह आहार की सामग्री कदापि नहीं है। प्रकृति ने इसे प्राणी जन्म के प्रयोजन से रचा है, प्राणियों के भोजन के लिए नहीं। यह तो मनुष्य का अनाचरण ही है कि उसने इस का यह रूप मान लिया और घोर हिंसक कृत्य में लिप्त हो गया है। आहार तो पोषण करता है, स्वयं शुद्ध और उपयोगी तत्त्वों से सम्पन्न होता है—अंडे में ये लक्षण नहीं पाये जाते। यदि आहार रूप में मनुष्य अंडे पर आश्रित हो जाय तो उसका सारा शारीरिक विकास अवरुद्ध हो जायगा। इसमें कार्बोहाइड्रेट लगभग शून्य होता है। कैलशियम और लोहा तथा आयोडीन जैसे तत्त्व अंडे में नहीं होते, विटामिन-ए की भी कमी होती है। ऐसी सामग्री चाहे खाद्य मान भी ली जाय—उसकी उपयोगिता क्या है? केवल अंडे का आहार किया जाय तो दाँतों, अस्थियों आदि का विकास और सुदृढ़ता के लिए संकट उत्पन्न हो जाय। कोलेस्टेरोल की मात्रा अंडे में इतनी होती है कि हृदयाघात

और रक्तचाप जैसे भयावह रोग उत्पन्न हो जाते हैं। लकवा और कैंसर की आशंका को भी अण्डा जन्म देता है। शरीर में नमक की मात्रा को बढ़ावा देकर यह अप्राकृतिक आहार मानव तन में नाना प्रकार की समस्याएँ जागृत कर देता है। अण्डे में न तो पोषण क्षमता है और न ही यह पर्याप्त ऊर्जा का स्रोत है। प्रोटीन शरीर के लिए एक आवश्यक तत्त्व है, वह अण्डे की अपेक्षा सोयाबीन, दालों और अन्य शाकाहारी पदार्थों में कहीं अधिक प्राप्त होता हैं। मूँगफली में तो अण्डे की अपेक्षा ढ़ाई गुना (लगभग) प्रोटीन है। अण्डा जितनी ऊर्जा देता है उससे लगभग तीन गुनी ऊर्जा मूँगफली में उपलब्ध हो जाती है। फिर विचारणीय प्रश्न यह है कि अण्डा जब ऐसा थोथा और रोगजनक पदार्थ है तो भला इसे इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है? उत्तर स्पष्ट है, सामान्यजन अण्डे की इस वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। ये अज्ञजन अण्डा-व्यवसाय के प्रचार-तंत्र के शिकार हैं। इसी कारण जो 'ना-कुछ' है, उसे अण्डे को 'सब-कुछ' मान लिया गया है।

मिथ्या प्रचार तंत्र के कारण अण्डा-महात्म्य तो इतना विकसित हो चला है कि सभी का जी इसकी ओर ललकने लगा है। व्यवसायियों का तो यह प्रयास रहेगा ही कि अंडों की खपत अधिकाधिक बढ़े। उसके उपभोक्ताओं का वर्ग और अधिक व्यापक हो। विगत कुछ युगों से तो यह भ्रान्त धारणा विकसित की जा रही है कि अण्डे सामिष खाद्यों की श्रेणी में आते हैं, किन्तु सभी अण्डे ऐसे नहीं होते। कुछ अण्डे निरामिष भी होते हैं, अर्थात् उनकी गणना शाकाहारी पदार्थों में की जाती है।" यह एक विचित्र, किन्तु असत्य है, मिथ्या प्रलाप है उनका यह मानना है कि ऐसे शाकाहारी अण्डों का उपभोग वे लोग भी कर सकते हैं जो अहिंसा-व्रतधारी हैं। ये शाकाहारी अण्डे सर्वथा सात्विक समझे जा रहे हैं—"वस्तुतः अण्डे न तो सात्विक होते हैं, न शाकाहारी और न ही अजैव। यह तो एक छद्म जाल है जो अण्डा व्यवसाय के विकासार्थ फेंका गया है और जिसमें अहिंसावादी वर्ग के अनेक जन उलझते जा रहे हैं। यह इन व्यवसायियों की दुरभि संधि है। अबोध अण्डा विरोधी जन स्वयं भी इस भ्रम से मुक्त नहीं हो पा रहे। वे अबोध तो यह पहचान

भी नहीं रखते कि कौन-सा अण्डा सामिष है और कौन-सा निरामिष कोटि का। अण्डे-अण्डे तो सभी एकसे होते हैं—फिर भला विक्रेता के कह देने मात्र से शाकाहारी अण्डा कैसे मान लिया जाय! अपने धर्म और मर्यादा के निर्वाह के लिए भी उसने इस समस्या पर कभी चिन्तन नहीं किया। आश्चर्य है! कुछ अण्डे शाकाहारी होते हैं, यह कहकर जन मानस को भ्रमित करने का ही षडयंत्र है।

शाकाहारी पदार्थों की पहचान

शाकाहारी पदार्थ क्या होते हैं—यह पहचानना दुष्कर नहीं है। वनस्पतियाँ और उनके उत्पाद ही शाकाहारी श्रेणी के पदार्थ कहे जा सकते हैं। वनस्पति की उत्पत्ति मिट्टी, पानी, धूप, हवा आदि के सम्मिलित योगदान से होती है। कृषिजन्य पदार्थ शाकाहारी हैं। प्राकृतिक उपादनों का आश्रय पाकर ही ये पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अतः ये निर्दोष हैं, सात्विक हैं। दूध जैसा पदार्थ भी शाकाहार के अन्तर्गत इसलिए मान्य है कि दुधारू पशु वनस्पति (घास-पात) चरकर ही दूध देते हैं। अब तनिक विचार कर देखें कि क्या अण्डे भी इसी प्रकार के पदार्थ हैं? ये मिट्टी-पानी आदि से नहीं जीवित प्राणी—मुर्गी से उत्पन्न होते हैं। इनकी संरचना में मुर्गी के शरीर के रक्त, रस, मज्जादि का योग रहता है और उसकी उत्पत्ति भी प्रजनन स्थान से ही होती है। अण्डों को शाकाहार फिर भला कैसे माना जा सकता है! सभी विज्ञानी और प्रबुद्धजन अब यह मानने लगे हैं कि शाकाहारी अण्डा जैसा कोई पदार्थ नहीं हो सकता। फलों और सब्जियों के साथ, एक ही दुकान पर अंडे भी बिकते हैं। यह छद्म रचा गया कि सामान्यजन अण्डों को शाक या सब्जी के समान समझने लगें। विभिन्न प्रचार-माध्यमों से यह भी खूब प्रसारित किया गया कि अण्डा भी एक सब्जी है। भारत की विज्ञापन मानक परिषद ने इसका अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अण्डा सब्जी नहीं है और ऐसा विश्वास दिलाकर इसका विक्रय नहीं किया जा सकता। ऐसा करना अपराध भी मान लिया गया है।

अण्डा शाकाहारी भी होता है : भ्रान्ति का तथाकथित आधार

यह सत्य है कि अण्डे दो प्रकार के होते हैं, यद्यपि इससे यह तथ्य सुनिश्चित नहीं हो जाता कि अण्डों का एक प्रकार सजीव और दूसरा निर्जीव है। वस्तुस्थिति यह है कि कुछ अण्डे ऐसे होते हैं जो मुर्गे के संयोग होने पर मुर्गी देती है और उनसे चूजे निकल सकते हैं। ये निषेचित या फलित होने वाले अण्डे होते हैं। मुर्गे से संयोग के बिना भी मुर्गी अण्डे दे सकती है और देती है। ये अनिषेचित या फलित न होने वाले अण्डे होते हैं, जिनसे चूजे नहीं निकलते हैं। यह अविश्वसनीय नहीं मानें कि मुर्गे के संयोग के बिना भी मुर्गी अण्डे दे सकती है। जब वह यौवन पर आती है तो ऐसा प्राकृतिक रूप से होता ही है। जैसे सभी को मासिकधर्म में रजः स्राव होता है—ये अण्डे मुर्गी के रज के रूप में बाहर आते हैं। यह उसके आन्तरिक विकार का विसर्जन है। यह सत्य होते हुए भी कि ये दूसरी प्रकार के अफलित-अनिषेचित अण्डे चूजों को जन्म नहीं देते, किन्तु केवल इस कारण इन्हें प्राणहीन मानना तर्कसंगत नहीं। इन अण्डों में भी प्राणी के योग्य लक्षण होते हैं, यथा—ये श्वासोच्छवास की क्रिया करते हैं, इनमें विकास होता है, ये खुराक भी लेते हैं। अब विश्वभर के विज्ञानी और जीवशास्त्री इन अफलित अण्डों को जीवयुक्त मानने लगे हैं। अमरीकी विज्ञान वेत्ता फिलिप जे. एकेबल ऐसी ही मान्यता के हैं। मुर्गे के बिना उत्पन्न होने के कारण इन्हें निर्जीव मानना मिशिगन विश्वविद्यालय के विज्ञानियों ने भी उपयुक्त नहीं माना है। इन का जन्म मुर्गी से हुआ, वह स्वयं प्राणी है। उसकी जीवित कोशिकाओं से जन्मे ये अण्डे निर्जीव नहीं हो सकते। चाहे ये मुर्गी की रज रूप में ही क्यों न हों—इनकी सजीवता में सन्देह नहीं किया जा सकता। हम कह सकते हैं कि प्राणवानता की दृष्टि से तो सभी अण्डे एक समान ही होते हैं। इन्हें शाकाहारी मानना भयंकर भूल होगी।

एक और भी तथ्य ध्यान देने योग्य है। कोई भी मुर्गी तब तक अण्डे नहीं दे सकती जब तक उसे जैविक प्रोटीन का आहार नहीं दिया जाता। मांस, मछली, रक्त, हड्डी आदि का आहार इन्हें दिया ही जाता है।

शैशवावस्था में जो चूजे मर जाते हैं, उन्हें सुखाकर उसका चूरा तक मुर्गियों को खिलाया जाता है।[1] चूजावस्था में जन्म के बाद आठ सप्ताह तक लायसन युक्त आहार दिया जाता है। लायसन में सूखी मछली और मांस का चूरा सम्मिलित होता है। ऐसी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भी क्या अण्डा शाकाहार रह सकता है? निषेचित या फलित अण्डे के विषय में कहा गया है कि यह तो जन्म से पूर्व चूजे को खाना है, किन्तु अफलित अण्डा तो सर्वथा अप्राकृतिक पदार्थ है—जहाँ तक उसके भोज्य रूप को मानने का सम्बन्ध है।[2] अहिंसावादियों का इन अण्डों को शाकाहारी मानना उन की भारी भूल ही है।

चूजों को बड़ी दयनीय अवस्था में रखकर विकसित किया जाता है। उन्हें प्रचण्ड प्रकाश में रखा जाता है और इतने छोटे से स्थान में अनेक मुर्गियों को रखा जाता है कि वे अपने पंख फैलाना तो दूर रहा, ठीक से हिल-डुल भी नहीं सकतीं। मुर्गियाँ एक-दूसरे पर चोंचों से आक्रमण करती हैं और घायल होती रहती हैं। इसी कारण मुर्गियों की चोंच तक काट डाली जाती है। भीड़-भड़क्के के मारे वे दाने-पानी तक नहीं पहुँच पातीं। यह वीभत्स वातावरण उनमें विक्षिप्तता का विकास कर देता है। सतत् उद्विग्नता के कारण उनका अशान्त रहना तो स्वाभाविक ही है। ऐसा इस प्रयोजन से किया जाता है कि वे शीघ्र बड़ी होकर अण्डा देना आरम्भ कर दें। उनमें उत्पन्न हिंसक वृत्ति अण्डों में भी उतर आती है और इनका उपभोग करनेवाला भी इस कुप्रभाव से बच नहीं पाता। शाकाहार तो तृप्ति, शान्ति, सन्तोष और सहृदयता उत्पन्न करता है। इस दशा में अण्डों को शाकाहार की श्रेणी में लेना अस्वाभाविक है। चाहे अण्डे फलित अथवा अफिलत हों—उनकी तामसिकता तो ज्यों की त्यों बनी रहती है।

यद्यपि यह मानना सर्वथा भ्रामक है कि अफलनशील अण्डे अहिंसापूर्ण, अजैव और निरामिष होते हैं, तथापि एक तथ्य और भी ऐसा

---

१. ए.सी. कैम्पबेल रोजर्स—'प्रोफिटेबल पोल्ट्री कीपिंग इन इण्डिया'

२. विक्टोरिया मोरान—'कम्पाशन द अल्टिमेटिक एथिक'

है कि जो आँखें खोल देने वाला है। अनिषेचित अण्डों को शाकाहारी मानने वाले इस ओर ध्यान दें कि मुर्गे के संयोग में आने वाली मुर्गी पहले दिन तो फलित होने वाला अण्डा देती ही है, आगे यदि संयोग न भी हो, तो भी वह लगातार अण्डे देती है और तब वे अजैव, अफलनशील नहीं होते। मुर्गे के शुक्राणु मुर्गी के शरीर में लम्बे समय तक बने रहते हैं। और यदा-कदा प्रतिक्रिया भी देते रहते हैं। कभी-कभी तो यह अवधि छह माह तक की भी हो सकती है। बीच-बीच में कभी भी वह फलनशील अण्डे दे देती है। दूसरे और पाँचवे दिन तो ऐसा होता ही है। फिर इस बात की क्या आश्वस्तता कि संयोगविहीन मुर्गी के अण्डे सदा प्राणशून्य ही होंगे, जैसा कि भ्रम कुछ लोगों में व्याप्त है।

मानव-मात्र को यह सत्य गाँठ-बाँध लेना चाहिए कि अण्डा आहार है ही नहीं, शाकाहार तो वह कदापि-कदापि नहीं। उसका आहार रूप में उपयोग निरर्थक है, क्योंकि उसमें पुष्टिकारक तत्त्व हैं ही नहीं। यह भ्रम भी दूर कर लेना चाहिए कि दूध की अपेक्षा अण्डा अधिक पौष्टिक होता है। शाकाहार वह कभी हो ही नहीं सकता, तथापि किसी को यह विश्वास हो तब भी उसे अण्डा सेवन के दोषों से परिचित होकर, स्वस्थजीवन के हित इसका परित्याग ही कर देना चाहिए। अण्डे हानि ही हानि करते हैं—लाभ रंचमात्र भी नहीं—यही हृदयंगम कर इस अभिशापक्षेत्र से बाहर निकल आने में ही विवेकशीलता है। दूध, दालें, सोयाबीन, मूंगफली जैसी साधारण शाकाहारी खाद्य सामग्रियाँ अण्डों की अपेक्षा अधिक पौष्टिकता-युक्त हैं, वे अधिक ऊर्जा देती हैं और स्वास्थ्यवर्द्धक हैं। तथाकथित शाकाहारी अण्डों के इस कंटकाकीर्ण से निकलकर शुद्ध शाकाहार के सुरम्य उद्यान का आनन्द लेना प्रबुद्धतापूर्ण होगा। धर्माचारियों और अहिंसाव्रतधारियों को तो इस फेर में पड़ना ही नहीं चाहिए। अण्डा—अनन्तः अण्डा ही है। किसी के यह कह देने से कि कुछ अण्डे शाकाहारी भी होते हैं—अण्डों की प्राकृति में कुछ अन्तर नहीं आ जाता। अण्डे की वीभत्स भूमिका इससे कम नहीं हो जाती, उसकी सामिषता ज्यों की त्यों बनी रहती है। मात्र भ्रम के वशीभूत होकर स्वाद के लोभ में पड़कर, आधुनिकता के आडम्बर में ग्रस्त होकर मानवीयता और धर्मशीलता की,

शाश्वत जीवन मूल्यों की बलि देना ठीक नहीं होगा। दृढ़चित्रण के साथ मन ही मन अहिंसा-पालन की धारणा कीजिये—अण्डे को शाकाहारी मानना छोड़िये। आगे का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त होता चला जायगा।

■■

६

जर्दा-धूम्रपान : समस्या और समाधान

'जर्दा—बड़ा बेदर्दा' लोक कथन कदाचित् इसी तथ्य का प्रतिपादक है कि तम्बाकू एक ऐसा व्यसन है जो मानवजाति के लिए एक क्रूर और निर्मम विनाशक है। एक यह अर्थ भी इस कथन से ध्वनित होता है कि यह व्यसन सुगमता से व्यक्ति को अपनी जकड़ में ले लेता है और तब धीरे-धीरे अपने शिकंजे को बड़ी ही बेदर्दी के साथ ऐसे कसता चलता है कि व्यसनग्रस्त बेचारा बेबस और असहाय-सा कसमसाकर रह जाता है। व्यक्ति, परिवार और समाज पर धूम्रपान के धुएं का साया ऐसा मंडरा रहा है कि एक दमघोटू वातावरण सघन होता चला जा रहा है, लोग एक छटपटाहट के साथ इससे मुक्ति का प्रयास करते हैं। प्रश्न यह है कि क्या यह व्यसन 'आछूट' है? क्या तम्बाकू की क्रूर जकड़ से मुक्ति पाना असंभव है? हमारा मत है कि चाहे कितनी ही मधुरता से, मनमोहक रूप में तम्बाकू अपना जाल फैलाए, किन्तु उससे बाहर निकल आना असंभव तो क्या कठिन भी नहीं है। आवश्यकता इसी बात की है कि व्यसनी के मन में व्यसन-त्याग की सुदृढ़ इच्छाशक्ति संकल्प की अचलता विकसित हो।

धूम्रपान और जर्दा सेवन आज सर्वप्रचलित व्यसन हो गया है यह सत्य है। यह भी सत्य है कि इस व्यसन ने आज अपने अनेकानेक रूप धारण कर मानवजाति को मरण के कगार पर पहुँचा दिया है। किन्तु इस महाविनाशक व्यसन को आधुनिकता की उपज मानना उपयुक्त नहीं होगा। इस राक्षस का अपना इतिहास है जो अतीत में दूर-बहुत-दूर

दिखायी देता है। अमेरिका के एक द्वीप नेकास्टरिका में लोग एक वनस्पति की सूखी पत्तियाँ चबाया करते थे। सम्भव है अन्य क्षेत्रों में भी यह लोकाचरण रहा हो, किन्तु इस द्वीप में कोलम्बस ने ऐसा देखा। यह घटना १५७१ ई. की बतायी जाती है। ये तम्बाकू की पत्तियाँ ही थीं। चबाकर तम्बाकू के नशे का वह युग रहा। कालान्तर में शीघ्र ही धूम्रपान भी प्रचलित हो गया। अमेरिका के इस क्षेत्र में उदित होकर इस व्याधि ने सर्वत्र अपनी प्रभाव-रश्मियाँ प्रसारित कर दीं और आज तो सारा विश्व ही इसकी कड़ी-प्रचण्ड धूप में जल रहा है। इस बात की होड़ हो गयी कि जर्दा उपयोग में कौन-सा देश शीर्षस्थ रहता है। सभी देशों में तम्बाकू की खेती होने लगी, कि यह आधारभूत पदार्थ स्थानीय रूप में उपलब्ध और सुलभ होने लग जाय। दुर्भाग्य के इस कठोर मार्ग पर भारत भी पीछे नहीं रहा। अमेरिका और चीन के पश्चात् भारत का विश्व में तम्बाकू उत्पादन की दृष्टि से तृतीय स्थान है।

कब से भारत में यह व्यसन प्रचलित है—इस बिन्दु पर विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर ही पहुँचेंगे कि धूम्रपान भारतीय सभ्यता का अंग भी प्राचीन काल में ही हो गया था। राजा-महाराजाओं की राजसभाओं में इसका प्रचलन रहा। मुगलकालीन ऐतिहासिक चित्रों में नवाबों, निजामों बादशाहों के दरबारों में हुक्के का चित्रण मिलता है। राज दरबारों से यह व्यसन सामन्तों के घरों में पहुँचा और वहाँ से उनके सम्पर्की परिवारों में पहुँचा। क्रमशः प्रसारित होते-होते यह व्यसन संक्रमण रोग की भाँति घर-घर में व्याप्त हो गया और सारा देश ही तम्बाकू के तथाकथित आनन्द में निमग्न हो गया। आज तो छोटा-बड़ा, सभी पुरुष, धनी-निर्धन सभी इस असुर की जकड़ में आ गये हैं। वाह जर्दा! वाह!! तू सच्चा समाजवादी है। तू जाति-पाँति, ऊँच-नीच, नर-नारी, यहाँ तक की बालक-युवा का भेद भी नहीं मानता। सभी को समान दर्जा देता है और सभी में अपना प्रसाद समानता के साथ ही वितरित करता है। धन्य है तू और धन्य है तेरा समाजवादी प्रभाव!

आज जर्दा जितना अधिक प्रचलित हो गया है कदाचित् इतिहास के किसी युग में यह इतना कभी नहीं रहा। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा किये

गये सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि भारत में ५२% वयस्कजन धूम्रपान करते हैं। जर्दा अन्य-अन्य रूपों में भी नशे के लिए प्रयुक्त होता है (यथा—चबाने वाला जर्दा, पान के साथ, खैनी, पान पराग, आदि।) यदि इन उपभोक्ताओं को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो व्यसनियों का प्रतिशत और अधिक हो जायेगा। इसके अतिरिक्त बालव्यसनियों का वर्ग भी है। एक और भी तथ्य है जो हम सभी को चौंका देने वाला है। इंग्लैंड और अमेरिका तम्बाकू खपत के बड़े देश माने जाते हैं। अमेरिका में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष औसतन डेढ़ किलोग्राम जर्दा खर्च होता है। किन्तु इन देशों में विगत १५ वर्षों में जर्दा उपभोक्ताओं की संख्या में क्रमशः ६% और २५% की कमी आई है। भारत में इसी अवधि में धूम्रपान करनेवाले लोगों की संख्या ३०% बढ़ गयी है। यह अभिशाप कितनी तीव्रता के साथ सघन और व्यापक होता चला जा रहा है—यह तथ्य इसका परिचायक है। भारतीय गाँवों में १० साल से अधिक की आयु के ७५% बच्चे और ४०% महिलाएँ धूम्रपान करती हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में लगभग ७० अरब रुपये का जर्दा प्रतिवर्ष प्रयुक्त हो जाता है। ये आँखें खोल देने वाले तथ्य हैं।

धूम्रपान और तम्बाकू-सेवन अत्यन्त कष्टकर रोगों का कारण बनता है। धूम्रपान तो अत्यन्त ही घातक होता है। चाहे चबाकर जर्दे का उपयोग किया जाय और चाहे सूंघकर—जर्दा अपना विध्वंसकारी प्रभाव दिखाये बिना रहता नहीं। चाहे बीड़ी, सिगरेट, च्यूरट, हुक्का—किसी भी रूप में धूम्रपान किया जाय—होता वह हानिकारक ही है, वैसे ही चाहे पान में, खैनी के रूप में, पान पराग या किसी अन्य रूप में जर्दा इस्तेमाल किया जाय जर्दा—जर्दा ही बना रहता है और वह रोगोत्पादन में पीछे नहीं रहता। फेफड़े के रोग तो उनमें अति सामान्य हैं। जैसे रसोई घर की दीवारें धुएं से काली हो जाती हैं—वैसे ही निरनतर धूम्रपान से फेफड़ों में धुआं जम जाता है। साँस की नली धुएँ के सम्पर्क में आती है। टी.बी. जैसे भयानक रोग के अलावा फेफड़े, छाती का कैंसर भी इसकी देन हो जाता है। जर्दा सेवन करने वालों के लिए मुँह के, पेट के कैंसर भी अतिसामान्य हैं और आँतों का कैंसर तथा अल्सर जैसे त्रासद और यातनापूर्ण रोग भी हो जाते

हैं। दाँतों का अस्वस्थ हो जाना ही जर्दा उपभोक्ताओं की सामान्य समस्या होती है। दमा और क्रोनिक ब्रोकाइंटिस भी इस व्यसन के स्वाभाविक परिणाम होते हैं। कुछ रोग तो ऐसे भी हैं जो इस व्यसन के कारण तो उत्पन्न नहीं होते किन्तु धूम्रपान उन रोगों की चिकित्सा को दुष्कर बना देता है। रोगोपचार के लिए दी जाने वाली औषधियाँ प्रभावशाली नहीं हो पातीं। यह व्यसन इतने घोर कष्टों और पीड़ाओं का आधार बन गया है कि यह कहा जा सकता है कि **जर्दा-सेवन मृत्यु के पूर्व ही नरक का द्वार खोल देता है।** इन व्यसनियों का जीवन वस्तुतः नारकीय ही बनकर रह जाता है। हृदय-रोग, डायबिटीज, रक्तचाप, ब्रेन हेमरेज जैसे मारक रोग जब जर्दा-सेवन के दुखद परिणाम हों तो अवश्य ही यह व्यसन त्याज्य माना जाना चाहिए, किन्तु दुर्भाग्य है कि ऐसा हो नहीं रहा।

धूम्रपान करने वाला आपकी हानि तो करता ही है, उसकी धूम्रपान की प्रवृत्ति अन्य लोगों के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचाती है। यह सत्य है कि यदि किसी व्यक्ति ने ४० सिगरेट पी ली और उसके समीप बैठे उसके मित्र ने एक भी सिगरेट नहीं पी—फिर भी उसे ३ सिगरेट जितनी स्वास्थ्य-हानि हो गयी। ऐसा इस कारण होता है कि धूम्रपान के दौरान उस व्यक्ति ने जो धुआँ छोड़ा, उसका कुछ अंश उसके मित्र के शरीर में भी चला गया था। गर्भवती महिलाएँ स्वयं चाहे धूम्रपान न भी करें, यदि उनके पति धूम्रपान करते हैं तो उनके गर्भस्थ शिशुओं के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव होता है। यदि भावी माँ धूम्रपान करे तो उसका शिशु गर्भ में ठीक से साँस भी नहीं ले पाता, जन्म लेने पर वह विकलांग हो सकता है, कम भार और नन्हा आकार तो होता ही है, वह जन्मजात रोगी भी होता है और अनेक संक्रामक रोगों का शिकार होने लग जाता है। उसमें बीमारियों से लड़ने की शक्ति भी कम हो जाती है। ऐसे अधिकांश शिशु अल्पायु में ही दिवंगत हो जाते हैं। जब यह व्यसन इतना वीभत्स और भयानक है, क्यों इतनी भारी संख्या में जनता इसके प्रति आकर्षित होती है? क्यों नहीं ऐसा व्यसनी इसका परित्याग कर पाता है? ये प्रश्न बौद्धिक धरातल पर भी और व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विचारणीय हो जाते हैं। सभी जानते हैं कि धूम्रपान हानिकारक है। यहाँ

तक सिगरेट पर चेतावनी भी छपी होती है कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, किन्तु सज्ञान होकर भी कितने लोग सचेत हो रहे हैं। इस व्यसन के घातक प्रभावों से आज अधिकांश लोग परिचित हैं, तथापि इस से जुड़े ही रहते हैं। कहा जाता है कि प्रथम विश्वयुद्ध बड़ा विनाशकारी था। इस युद्ध में चार वर्षों में जितने व्यक्ति मारे गये थे, उतने व्यक्ति तो मात्र डेढ़ वर्षों में यह व्यसन खा जाता है। एड्स बड़ा असाध्य रोग है—इससे भी एक दशक में जितने लोग शिकार हो जाते हैं, राक्षसी तम्बाकू उतने लोगों का आहार मात्र डेढ़ माह में ही कर लेता है। ऐसा कहा जाता है कि इस व्यसन में ग्रस्त हर चार व्यक्तियों में से एक की मृत्यु निश्चित होती है। इस भयानक भूमिका में यह व्यसन सक्रिय है, तथापि आश्चर्य है कि व्यसनियों की आँखें नहीं खुलतीं। वे इस घातक मार्ग पर अग्रसर होना छोड़ नहीं पा रहे हैं।

यह मानना ठीक नहीं कि चार में से एक व्यसनी ही तो मृत्यु को प्राप्त होगा। संभव है हमारा स्थान सुरक्षित रह जाने वाले तीन व्यक्तियों में हो—फिर इस आनन्द का परित्याग क्यों किया जाय। दमा रोग के विशेषज्ञ चिकित्सक डॉ. वीरेन्द्रसिंह ने एक अच्छा तर्क इस सम्बन्ध में दिया है।[1] उनका कहना है कि यदि नदी के उस पार ले जाने के लिए चार नौकाएँ खड़ी हों और आप को कहा जाय कि इनमें से कोई एक नौका मझधार में डूब जायगी। क्या आप इनमें से किसी नौका में चढ़ेंगे। इसी प्रकार तम्बाकू व्यसन के होने वाले एक व्यक्ति के शिकार के रूप में आप ही हों। अर्थ तो उस प्रवृत्ति के त्याग से है जो हानिकारक है। विवेकशीलता इसी में है कि इस व्यसन का परित्याग ही कर दिया जाय। नयी पीढ़ी को तो चाहिए कि इस घोर संकटपूर्ण क्षेत्र में प्रवेश ही नहीं करे।

धूम्रपान कुसंगति अथवा पारिवारिक वातावरण से आरम्भ होता है। बचपन की अबोधावस्था में मित्रों से प्रेरित होकर धूम्रपान व जर्दा सेवन का व्यसन अंकुरित होता है। इस अवस्था में भी वह छिपकर यह सब कुछ करता है—अर्थात् वह स्वयं भी इसके अनौचित्य को मानता है और अन्य लोगों के लिए वह निन्दा व भर्त्सना का पात्र बनेगा—इसे भी वह मानता

[1] 'जर्दा धूम्रपान'—इंडियन अस्थमा केयर सोसाइटी द्वारा प्रकाशित।

ही है। कुछ आयु बढ़ जाने पर वह शौक पूरा करने के लिए, समाज में अपना वर्चस्व जमाने, व्यक्तित्व की धाक जमाने, आधुनिक समझा जाने के लिए इस सब का उपयोग करता रहता है। धीरे-धीरे इन पदार्थों की उसे आदत हो जाती है और यह आदत इतनी पक्की हो जाती है कि वह इन का दास हो जाता है। इनके उपयोग की इच्छा मन में बलवती रहती है, इनकी अनुपलब्धि से वह अधीर हो उठता है। उसे तलब लगती है और इनके सेवन की आकांक्षा को दबा नहीं पाता। इसी क्रम का चरम तब आता है जब वह इस व्यसन के परित्याग की कल्पना से भी सिहर उठता है। उसे प्रतीति होने लगती है कि वह धूम्रपान या जर्दे के बिना रह ही नहीं सकता। वह व्यसनाधीन हो जाता है।

क्या धूम्रपान या तम्बाकू सेवन छोड़ना वास्तव में सम्भव नहीं है? नहीं ऐसा नहीं है। इसका परित्याग सर्वथा सम्भव भी है और इसके परित्याग में मानव-कल्याण भी निहित है। इसके निमित्त यह आवश्यक है कि इसके अनुकूल सशक्त वातावरण निर्मित किया जाय। प्रचार-माध्यमों को इसके पक्ष में अपनी-अपनी भूमिका निभानी चाहिए। जर्दे के संहारक रूप को प्रभावशाली ढंग से उजागर किया जाना चाहिए। पत्रिकाओं में लेख हों, रेडियो पर वार्त्ताएँ हों, दूरदर्शन पर नाटक हों, साहित्यरचना हो—और भी अनेकानेक जनशिक्षा की पद्धतियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं। कठपुतली व अन्य लोक कलाओं का माध्यम भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

इन सबका लाभ व्यक्ति तभी ग्रहण कर सकता है कि जब उसमें व्यसन त्याग की प्रबल इच्छा शक्ति हो। उसमें इरादे का पक्कापन होना अनिवार्य है। बाहर का वातावरण मानस निर्मित कर सकता है, इस मनस्कता को सुदृढ़ बनाए रखने का दायित्व तो स्वयं सम्बन्धित व्यक्ति का ही होगा। इरादा बनाने में चिकित्सक की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होती। रोगी के लिए चिकित्सक के समान विश्वसनीय और कोई होता ही नहीं। उसका कथन रोगी के लिए मर्मस्पर्शी होता है। एक सर्वेक्षण का प्रतिवेदन है कि एक हजार में से ३ व्यक्ति स्वेच्छा से जर्दा-त्याग करते हैं, जबकि ५१ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो चिकित्सक के परामर्श से व्यसन त्याग को सन्नद्ध हो जाते हैं। इस व्यसन का आरम्भ

चाहे किसी कारण से और किसी भी वातावरण में होता हो किन्तु इसके कुप्रभावों की अनभिज्ञता इसके चलते चले जाने के पीछे प्रमुख कारण होती है। अधिकारी विद्वानों का मत है कि १९६० ई. के पश्चात् ही इसके कुप्रभाव सार्वजनिक रूप से प्रचारित-प्रसारित हो पाये हैं। आज भी यह हमारे देश की एक प्रबल आवश्यकता बनी हुई है कि इन कुप्रभावों को गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचाया जाय। जन जागरण की परमावश्यकता है। जो लोग इस व्यसन में फँस गये हैं, उन्हें यह बोध भी देना होगा कि धूम्रपान या जर्दा प्रयोग न तो विलासिता और शान की प्रतीक है, न इस से आधुनिकता का कोई सम्बन्ध है। यह भी बताना होगा कि शिष्टाचार के अंग के रूप में इस व्यसन का कोई महत्त्व नहीं है। यह विश्वास भी जागृत करना होगा कि इसकी आदत चाहे कितनी ही पुरानी और पक्की ही क्यों न हो, वह इतनी पक्की नहीं हो सकती की छूट न पाए। इसके लिए भी उन्हें प्रेरित करना होगा कि इस विनाशक प्रवृत्ति के परित्याग के लिए इच्छा शक्ति को सुदृढ़ कर लो। बस, और कुछ भी आवश्यक नहीं है। उन्हें सीख देनी होगी कि इस व्यसन से सम्बन्धित पदार्थों (बीड़ी, सिगरेट, पान, खैनी, पान रागादि) के लिए किसी से अनुरोध भी न करो और किसी का अनुरोध स्वीकार भी न करो।

परित्याग को तत्पर हो जानेवाले व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं। उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि वे किसी कुतर्क में पड़कर व्यसन के किसी हल्के-फुल्के (तथाकथित) तरीके को न अपनाने लग जाएं। छोड़ना है तो तम्बाकू के हर रूप को घातक मान कर पूर्णतः छोड़ना है। बीड़ी से तो सिगरेट अच्छी, या सादी से फिल्टर वाली सिगरेट अच्छी, या बीड़ी से हुक्का अच्छा, या धूम्रपान से तो जर्दे का पान ठीक है, या तम्बाकू के पान से गुटखा अधिक अच्छा है—ये सभी ऐसे ही कुतर्क हैं। इस आधार पर एक को छोड़कर दूसरे का पल्ला पकड़ने वाला—इच्छा शक्ति का दुर्बल होता है। उसका मन कब हल्की-फुल्की चीज से हटकर पुनः अधिक हानिकारक वस्तु पर आ जायगा—कुछ कहा नहीं जा सकता। इरादे का ऐसा कमजोर आदमी कभी कामयाबी की ओर बढ़ ही नहीं सकता। फिर यह भी गाँठ बाँध लेना चाहिए कि व्यसन का कोई साधन हानिकारक है

और दूसरा नहीं– ऐसा मानना स्वयं ही हानिकारक मूल है। जर्दा-जर्दा सब एक है, रूप चाहे उसका कोई भी रहे–जर्दे की हानि हर रूप में ज्यों की त्यों बनी रहती है। जादू की कोई छड़ी ऐसी नहीं जो किसी का यह व्यसन छुड़ा सके। संकल्प की दृढ़ता ही यह चमत्कार कर दिखा सकती है।

इस संकल्प की दृढ़ता के लिए भी आवश्यक यह है कि व्यक्ति आत्मचिन्तन करे, अपनी स्थिति का विश्लेषण करे, व्यसन की हानियों की गहराई में जाकर उन्हें पहचाने-अनुभव करे, अपने भविष्य की सही-सही कल्पना करे और तब व्यसन परित्याग का विचार मजबूत बनाए। फिर जगत की कोई भी शक्ति उसे उसके निश्चय से डिगाने का साहस नहीं कर सकती। अपने इस निश्चय की उसे सार्वजनिक घोषणा भी करनी चाहिए और उस पर टिका भी रहना चाहिए। उसका यह कदम ऐसा होगा कि अन्य लोगों की ओर से इन पदार्थों का आग्रह उससे नहीं किया जायगा। इस से उसके मन के प्रलोभन के अवसरों को पाकर दुर्बल हो जाने की आशंका नहीं रहेगी। वह भी कभी-कभी उपभोग कर लेने की छूट का लाभ संकोच वश नहीं कर पाएगा। अपने आप एक रोक लगी रहेगी। धीरे-धीरे इन उपभोगों की आदत ही छूट जायगी।

इस प्रकार का संकल्प निरर्थक रहेगा कि अब मैं केवल तीन सिगरेट प्रतिदिन पीऊँगा, या जर्दे का उपयोग केवल घर में करूँगा, बाहर नहीं आदि-आदि। ये आंशिक परित्याग हैं, जिनकी कोई महत्ता नहीं है। व्यसन का त्याग तो सर्वथा और पूर्णतः होना चाहिए। ऐसा व्रत ही इस अभिशाप के मोचन की विधि हो सकता है। प्रतिज्ञा भी करो और उस पर अटल रहो, उसके पालन में गलियाँ मत निकालो–परित्याग के लिए यही सफलता का मूल मन्त्र है। ऐसे व्यक्तियों को प्रतिज्ञा पालन कर लेने का अपरिमित आत्मविश्वास भी बनाए रखना चाहिए।

व्यसन परित्यागियों को कुछ ऐसा भी करना चाहिए जिस से उनके मन में इन व्यसन सामग्रियों के प्रति न केवल विकर्षण, अपितु घृणा भी उत्पन्न हो। धूम्रपान छोड़ने के लिए सिल्वर ऐसिटेट का कुल्ला करना, अथवा इसकी गोली चूसना सहायक रहता है। इस प्रक्रिया से मुँह में एक विचित्र प्रकार का कसैलापन और कटुता व्याप्त हो जाती है और धम्रूपान

से घृणा हो जाती है। इसी प्रकार एक साथ इकट्ठा धूम्रपान कर लेने से भी यही परिणाम रहता है। धूम्रपान का अभ्यस्त एक व्यक्ति अपनी ही इस आदत से बहुत परेशान हो गया। अनेक बार उसने सिगरेट छोड़ने की चेष्टा की। उसने छोड़ा भी, पर बार-बार यह लत लग जाती थी। एक दिन वह एक-के-बाद दूसरी, लगातार बहुत सारी सिगरेट पीता चला गया। काफी देर तक धूम्रपान का यह क्रम चलता रहा। कई पैकेट वह फूँक चुका कुछ पैकेट अभी भी सामने रखे थे। अचानक उसने एक नयी सिगरेट के दो कश लेकर उसे ऐशट्रे में दबाकर बुझा दिया और वह उठ खड़ा हुआ। शेष बचे दो पैकेट की सिगरेटें उसने हाथों में कुचल कर खिड़की के बाहर फेंक दीं। उसके मन में धूम्रपान के प्रति प्रचण्ड घृणा का भाव अंकुरित हो गया। उसने इस कुमार्ग पर आगे बढ़ने का विचार त्याग दिया। उसने भविष्य में कभी भी धूम्रपान न करने की प्रतिज्ञा की। उसकी प्रतिज्ञा भी पूरी हुई। उसने धूम्रपान उसके बाद किया ही नहीं। शेष बची सिगरेटों को उसने कदाचित् इसी विचार के साथ कुचल कर फेंक दिया था कि कोई अन्य भी धूम्रपान न कर सके। यों धूम्रपान का परित्याग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

ऐसा भी सम्भव है कि धूम्रपान का परित्याग कर चुकने के पश्चात् भी कभी-कभी मन में इसकी तलब जागे, धूम्रपान के लिए मन अधीर हो उठे। ये ही परीक्षा की घड़ियाँ होती हैं—इस परीक्षा से सफलतापूर्वक गुजर जाना आवश्यक होता है। यदि यहाँ मन दुर्बल हो जाय तो फिर उसका अब तक का तप भी व्यर्थ हो जाता है और वह उसी पंक में पुनः ग्रस्त हो जाता है जिसे वह छोड़कर आया है। इस स्थिति से आत्मरक्षा के लिए डॉ. वीरेन्द्रसिंह के मतानुसार निम्नलिखित रूप में आचरण किया जाना सहायक रहेगा—

- इस तलब को नकारिये और जर्दा-धूम्रपान परित्याग के फायदों की बात सोचिये।
- सोचिये कि इस परित्याग से स्वयं आपके अतिरिक्त आपके परिवार (बीबी-बच्चों) को भी कितना लाभ है।
- स्वयं को याद दिलाइये कि यह आपकी परीक्षा का समय है और

इसमें आपको खरा उतरना है।

- अपने को अधिकाधिक व्यस्त रखिये।
- मुख में इलायची-सौंफ रखिये।
- लम्बे-लम्बे, गहरे साँस लेकर मन ही मन दोहराइये कि मैं कभी जर्दा धूम्रपान नहीं करूँगा। ध्यान से भी इस अधीरता को नियन्त्रित किया जा सकता है।
- उन लोगों का विचार कीजिये जो कई-कई दिन तक उपवास कर अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करते हैं, क्या मैं उनसे भी कमजोर हूँ।
- यह व्यसन भयावह रोगों को उत्पन्न करते हैं। यदि मैं भी ऐसी दुर्गति को प्राप्त हो गया तो मेरे परिवार का क्या होगा—इस आशय का चिन्तन कीजिये।
- जब जर्दा, सिगरेट, बीड़ी आदि को देखें तो अपने बच्चों को याद कीजिये। सोचिये कि ये पदार्थ उनसे पितृस्नेह वात्सल्य और संरक्षण छीन सकते हैं।

सरकार, सार्वजनिक संगठन आदि भी इस व्यसन के विरोध की दिशा में सतर्क अवश्य हैं, उनके प्रयत्न अधकचरे और बेमन से किये गये हैं। अमेरिका में १८ वर्ष से कम आयुवालों के लिए धूम्रपान कानूनन निषिद्ध कर दिया गया है। उल्लंघनकर्त्ता के लिए १०० डालर जुर्माने का प्रावधान है। चीन में सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान अपराध (१९९२ से) माना गया है। इसके विपरीत भारत में यह कर दिया गया है कि सिगरेट पर यह चेतावनी छापना अनिवार्य है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए घातक हो सकता है। ध्यातव्य है कि "हो सकता है" लिखा जाता है। सार्वजनिक वाहनों में धूम्रपान पर प्रतिबन्ध लगाया गया है, किन्तु इसका भी पालन नहीं कराया जाता। यह प्रश्न भी विचारणीय है कि जब तम्बाकू की ऐसी महाविनाशकारी लीलाएँ हैं तो इसकी खेती पर प्रतिबन्ध क्यों नहीं लगा दिया जाता है? शासन को तम्बाकू की कृषि से राजस्व के रूप में भारी आय होती है। तम्बाकू की अपनी कुछ विशेषताएँ भी हैं। इसमें कतिपय महत्त्वपूर्ण औषधीय तत्त्व होते हैं। इन तत्त्वों से अनेक असाध्य रोगों की चिकित्सार्थ प्रभावकारी औषधियों का निर्माण होता है। प्रकृति ने

कदाचित् इसी प्रयोजन से इस वनस्पति की रचना की—यही इसका सदुपयोग है। यदि मानव जाति उसके हानिकारक रूप को अपना कर व्यसन ग्रस्त हो जाती है—तो इसमें फसल का कोई दोष नहीं। यदि तम्बाकू में अच्छाई और बुराई दोनों विद्यमान हैं, तो केवल बुराई के कारण उसकी कृषि बन्द कर दें और अच्छाई से भी वंचित हो जाएं—तो यह नीतिपरक विचार नहीं होगा। तम्बाकू रहे—उसका दुरुपयोग नहीं रहे—यही उपयुक्त मार्ग होगा। तम्बाकू से मानवजाति को आत्मरक्षा का प्रयत्न स्वयं करना होगा।

जर्दा-धूम्रपान के संहारक परिणामों से जन सामान्य को रक्षित रखना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु सर्वप्रथम चरण यही उठाया जाना चाहिए कि तम्बाकू विरोधी मानस तैयार किया जा सके। बार-बार जब अनेक माध्यमों से यही स्वर निनादित होता रहेगा कि जर्दा धूम्रपान घातक है, संहारक है, विनाशक है, समाज और परिवार-विरोधी है। इसे त्याग कर ही व्यक्ति और समाज सुख-शान्ति का अनुभव कर सकता है। तो कभी तो इसके सुपरिणाम होंगे ही। कितना ही हठीला मानव-मन क्यों न हो—कभी तो उसमें विवेक जागृत होगा ही। नयी पीढ़ी में तो तम्बाकू विरोधी संस्कार पनपाये ही जाने चाहिये। इस हेतु इस व्यसन-त्याग की प्रेरणा देने वाला साहित्य शिक्षा के नियमित पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य भाग बनाया जाना चाहिए। इससे बाल मन में जर्दा-धूम्रपान विरोधी भाव स्थापित होगा—वे इस व्यसन से दूर रहेंगे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह प्रमाद अभिवर्धित होता रहेगा। एक समय ऐसा आयगा जब यह व्यसन या तो सर्वथा उन्मूलित हो जायगा, या नाम-मात्र का ही रह जायगा।

आवश्यकता इसी बात की है कि सभी सम्बद्ध पक्ष तम्बाकू-सेवन और धूम्रपान के व्यसन के प्रश्न को गम्भीरता से लें और पूर्ण निष्ठा एवं आस्था के साथ इसके उन्मूलन की चेष्टा करें। ये प्रयत्न कभी विफल नहीं होंगे। सम्भव है, प्रारम्भिक स्थिति में इनकी प्रभावशीलता कम रहे, या इसमें प्रगति मंथर रहे। किन्तु इन सद्प्रयासों के दूरगामी परिणाम शुभ ही होंगे। ये लोक मंगल की साधना और मानवहित की आराधना सिद्ध होंगे।

■■

७

जर्दा-धूम्रपान : नुकसान ही नुकसान

एक युवा इंजीनियर धूम्रपान का शौकीन था। एक शाम जब वह सड़क निर्माण कार्य का निरीक्षण करने को गया तो उसका आठ वर्षीय पुत्र भी गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी एक पुलिया के समीप रुकी। दोनों गाड़ी से उतरे। जिज्ञासापूर्वक बेटे ने एक ओर संकेत करते हुए पूछा—"डैडी, ये लाल झंडियाँ क्यों लगी हैं?" पिता ने उत्तर दिया—"बेटे इधर सड़क का काम चल रहा है न! वाहनों को लाल झंडियों से सावधान किया जाता है कि आगे खतरा है।" बेटा कुछ सोचने लगा। रात को घर में डैडी ने सोफे पर बैठे-बैठे बड़ी शान के साथ पुत्र को भीतर से सिगरेट का पैकेट ले आने को कहा। बालक भीतर गया। दीदी के लाल रिबन से उसने एक टुकड़ा काटा। डैडी की टेबुल से एक आलपिन ली और पैकेट पर झंडी नुमा गाड़ दी। लाल रिबन का टुकड़ा पिन में खोस रखा था। डैडी ने पूछा कि यह क्या किया? तो बेटे ने उत्तर दिया कि सिगरेट भी तो खतरनाक होती है न! डैडी इस बाल चातुर्य पर ठहाका मार कर हँसे। अगले ही क्षण धुएँ के छल्ले बनाते हुए वे छत को घूरने लगे।

जर्दा-धूम्रपान—आत्महत्या का सामान

हमारे समाज में ऐसा होता ही रहता है। अब वह युग नहीं रहा कि जर्दा धूम्रपान से होने वाली हानियों से लोग अनभिज्ञ हों। अनेक विधियों

से उन्हें सतर्क किया जा रहा है कि धूम्रपान घातक है, किन्तु व्यसनियों का ध्यान उधर जाता ही नहीं। बालक की बात भी व्यसन-विरोधी होती है, पर बड़ों का आचरण व्यसन-सेवी ही बना रहता है। जानबूझ कर भी मृत्यु के मुख में जाने से वे बाज नहीं आते।

व्यसनियों का यह आचरण आत्मविनास को बुलावा देने के समान ही तो है। वे आत्महत्या में प्रवृत्त हैं। आत्महत्या तो कुछ ही पलों में जीवन-लीला को समाप्त कर देती है। यह व्यसन तो बड़ा निष्ठुर और कठोर है। धूम्रपान और जर्दा सेवन भयंकर रोग लगा कर असह्य पीड़ा पहुँचाते हैं। जीवन को नरक बना देने वाले ये घातक पदार्थ कभी-कभी तो वर्षों तक रोगी को तड़पाते रहते हैं। कैंसर और हृदयाघात की पीड़ा दिल हिला देने वाली होती है। जर्दा-उपभोग अल्सर का कारण बनता है। मधुमेह, लकवा, रक्तचाप, दमा जैसे जानलेवा रोग इसके स्वाभाविक परिणाम होते हैं। ये भयावह रोग निश्चित ही मरण के सुदृढ़ कारण हैं।

आश्चर्य तो होगा, किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि हम दस तक गिनती पूरी करें। तभी तक हमारे देश में ५ व्यक्ति जर्दा-धूम्रपान के कारण मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। केंसर से पीड़ित लोगों की नियति अटल मृत्यु ही होती है इसमें तो अब आश्चर्य नहीं रहा, किन्तु विचारणीय यह अवश्य है कि कैंसर से मरनेवाले लोगों में से १० प्रतिशत को जर्दा-धूम्रपान के कारण कैंसर हुआ और वे मृत्यु को प्राप्त हुए। कहा जाता है कि यदि व्यसन नहीं होता तो हृदयाघात से मरनेवालों की संख्या ही आधी रह जाती। दमा से मरनेवाले हर दस में से नौ व्यक्ति इस व्यसन में ग्रस्त रहे होते हैं। यह मानने योग्य तथ्य है कि जर्दा-व्यसनी लोगों में से एक चौथाई लोग इस व्यसन के कारण अकाल ही काल के कराल गाल में समा जाते हैं।

यह भी सत्य है कि जर्दा-धूम्रपान अपने बड़े ही आकर्षक और मनमोहक रूप में व्यसनियों को मुग्ध करता है और अपने मायाजाल में उलझाकर उसे ऐसे चूस लेता है, जैसे मकड़ी अपने जाले में फँसा कर छोटे-छोटे कीटों की दुर्दशा कर देती है। अन्तर फिर भी इतना अवश्य ही है कि मकड़ी कीड़ों की ओर जाला फैलाती है, यह अभागा मानव तो स्वयं

इस घातक व्यसन की ओर बढ़ रहा है, बढ़ता जा रहा है। सद्यःमरण मनुष्य भी सचेत नहीं होता। ऐसा ही एक कैंसर रोगी अधमरा सा बिस्तर पर पड़ा था। दूर बड़े कमरे के कोने में हुक्का पड़ा था और उसकी लम्बी नली उस तक फैली हुई थी। मुँह में नली का सिरा दबाए वह धूम्रपान के आनन्द में मगन था कि उसके एक मित्र ने आकर पूछा—भाई हुक्का इतना दूर क्यों रखे हुए हो? उस मरणासन्न रोगी ने सरलतापूर्वक उत्तर दिया—"क्या करूँ यार, डॉक्टर ने कहा है कि अगर अब भी मौत से बचना चाहते हो तो तम्बाकू से दूर रहो। हुक्का तो दूर रखना ही पड़ेगा ना।" हम तो विनाश के कगार पर पहुँच कर भी जर्दा-धूम्रपान से इस प्रकार की दूरी निभाना जानते हैं। यह हमारी आत्मघाती चेष्टा नहीं तो और क्या कही जायगी!

धूम्रपान करता है जो : निरीहजनों का इत्यारा वो

"करे कोई और भरे कोई" यह कहावत धूम्रपान के व्यसन के साथ पूर्णतः चरितार्थ होती है। आत्महत्या के रूप में धूम्रपान करने वाला न केवल अपनी प्राण-हानि ही करता है वह उन निरीह जनों के प्राणों से भी क्रीड़ा करता है जिनका इस व्यसन से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका दुष्कर्म यदि कोई है, उनका अधर्म कोई है तो यही कि वे धूम्रपान व्यसन के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। इस व्यसन की छाया भी इतनी घातक है कि धूम्रपान करने वालों की संगति भी भारी विनाशकारी हो जाती है। पन्द्रह सिगरेट पीने पर किसी व्यक्ति को जितनी हानि होती है, वह तो होती है, तीन सिगरेट पीने के बराबर हानि उन लोगों के स्वास्थ्य को हो जाती है जो धूम्रपान करने वालों के समीप रहते हैं। व्यसनी जन कश खींचकर जो धुआँ उगलते हैं, समीपस्थ जन विवशतः उसे निगलते हैं। यह प्रक्रिया उनके लिए धूम्रपान करने के समान ही सिद्ध होती है और वे सभी कुप्रभाव उनको भी झेलने पड़ते हैं जो धूम्रपान व्यसनी को भोगने होते हैं। अन्तर केवल तीव्रता का हो सकता है, कुप्रभाव की त्वरितता या विलम्ब का हो सकता है। इस प्रकार धूम्रपान के कुप्रभावों से ग्रस्त होने वाले निष्क्रिय व्यसनी होते हैं। वे उस पाप का दण्ड भोगते हैं, जो उन्होंने कभी

नहीं किया। कैसी विडम्बना है। कैसी करुणाजनक स्थिति है। इसी कारण सार्वजनिक वाहनों में लिखा रहता है—"धूम्रपान नहीं करें।" यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि लिखने वाले पेंटर की उँगलियों में जब लेखनी थमी हुई थी, उसके होठों के बीच बीड़ी भी दबी थी और इस लेख के नीचे बैठे यात्री लगातार धूम्रपान करते रहते हैं। कोई मनचले तो ऐसे भी निकल आते हैं जो धूम्रपान के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रदर्शित करते हुए 'नहीं' से न को खुरच देते हैं और सभी को स्वच्छन्दतापूर्वक धूम्रपान का आनन्द उठाने के लिए सुविधा दे देते हैं। ये धूम्रपानी बीड़ी-सिगेरट पीते कम और आस-पास वालों को पिलाते अधिक हैं। और ये निष्क्रिय पियक्कड़ बेचारे या तो विरोध ही नहीं कर पाते या उनका क्षीण स्वर धुएँ के छल्लों में ओझल हो जाता है। यदि ३००० व्यक्ति प्रतिदिन जर्दा-धूम्रपान के कारण मरण को प्राप्त हो जाते हैं तो ऐसे निष्क्रिय धूम्रपानियों की संख्या भी लगभग २०० होती है जो मात्र व्यसनियों के संसर्ग के कारण मारे जाते हैं। क्या ये धूम्रपान व्यसनी हत्यारे नहीं हैं?

यह प्रश्न तो तब और भी गम्भीरता के साथ गूँजने लगता है जब ये हत्यारे अपने परिवार की महिलाओं और बच्चों को भी इस लपेट में ले आते हैं। यही नहीं वे आने वाली पीढ़ी के लिए भी अभिशाप की काली छाया बन जाते हैं। धूम्रपान कर्त्ता पति अपनी गर्भवती पत्नी के गर्भ के शिशु को भी दुर्बल और अपंग बना देता है, अपनी धूम्रपान की दुष्प्रवृत्ति से। गर्भवती महिला के शरीर में प्रविष्ट होकर यह विषैला धुआँ बच्चेदानी को ही विषाक्त बना देता है जिसमें शिशु घिरा रहता है। यह धुआँ ऑक्सिजन की कमी उत्पन्न कर शिशु का साँस लेना भी दूभर कर देता है। माँ का रक्त विकारग्रस्त हो जाता है और उस दूषित रक्त से पोषण पाकर शिशु जन्म से पूर्व ही नाना प्रकार के रोगों से घिर जाता है। जन्म के पश्चात् उसकी आयु ही प्रायः क्षीण नहीं होती—वह छोटे आकार और कम वजन का भी रह जाता है। भला भावी पीढ़ी के प्रति इतना अत्याचार करने का अधिकार इन व्यसनियों की झोली में कैसे आ गया। जो भी हो ये व्यसनीजन अपने पड़ोसियों के लिए गम्भीर संकट अवश्य हैं। इनकी संगति से स्वयं को बचाये रखना भी उतना ही आवश्यक है जितना इस

व्यसन से बचकर रहना। श्वास के लिए शुद्ध हवा प्राप्ति का जन्मसिद्ध अधिकार प्रत्येक व्यक्ति का है। धूम्रपान व्यसनी इस अधिकार का हनन करते हैं—सभी को इनसे सावधान रहना होगा—इनके सान्निध्य से बचना होगा।

आर्थिक हानियाँ

जर्दा-धूम्रपान की लत हमारे देश के लिए भी भयानक रूप से हानिकारक सिद्ध हो रही है। भारत जैसा विकासशील देश लोगों की इस लत के कारण पिछड़ रहा है। सामान्यजन को यह जानकर आश्चर्य हो तो कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे देश में ७० अरब रूपये की धनराशि इस शौक के पीछे फूँक दी जाती है। यह राशि कम नहीं है। यदि योजनाओं में इस धन का सदुपयोग हो तो देश की प्रगति तीव्रतर हो सकती है। एकड़ों भूमि पर तम्बाकू की कृषि होती है। आवश्यकता इस बात की है कि उस भूमि पर मानवजाति के लिए उपयोगी उत्पादन किया जाय और धरती को माता कहलाने का गौरव बढ़ाया जाय। उपयोगी फसलों से देश की आय भी बढ़ेगी।

व्यसनी व्यक्ति स्वयं और उसका परिवार कितनी आर्थिक विषमताओं से घिरा रहता है—यह वही जानता है। यह बड़ा ही व्यय-साध्य शौक है। व्यक्ति के वित्तीय सामर्थ्य के बाहर की यह लत है। प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा होनेवाला व्यय ध्यान में नहीं आता, किन्तु इस मिथ्या शौक से बचकर यदि कोई अपव्यय को रोके तो उसे उसके परिणाम ही मिलते हैं। इस धन का उपयोग उत्तम जीवन जीने की दिशा में किया जा सकता है। एक वित्तीय विश्लेषण से ज्ञात होता है कि यदि कोई व्यक्ति एक पैकेट भी प्रतिदिन सिगरेट का प्रयोग करता है तो लगभग १० रु. उस पर व्यय करता है जो माह में तीन सौ रुपया हो जाय—यह साधारण बात है। यदि वह यह व्यय नहीं करे और बैंक में यह राशि जमा करे तो मूलधन ३६०० रु. और ब्याज सहित ५ वर्ष में दुगनी हो जायेगी। यह रकम इसी प्रकार बचत करते रहने पर अगले पाँच साल में तीन गुनी और अगले ५ साल में सात गुनी और अगले ५ साल में १५ गुनी हो जायगी। इसी क्रम में २५ वर्षों में यह राशि कितनी हो सकती है। क्या धूम्रपानियों ने कभी

इस दृष्टि से विचार किया है और सोचा है कि वे कितनी हानि अपने परिवार की कर रहे हैं। यदि धूम्रपान न त्यागा गया तो इस समय के आते-आते लगभग १००० प्रतिमाह चिकित्सा व्यय भी होने लग जायगा। अब तनिक व्यसन के प्रवाह को थामकर सोचना होगा कि विवेकशीलता का मार्ग कौन सा है।

सामाजिक विघटन

जर्दा-धूम्रपान का विकार वैसे ही भारतवर्ष में अत्यन्त सघन हो गया है और उत्तरोत्तर वह फैलता ही जा रहा है। हमारी आधी जनसंख्या इस विकार से ग्रस्त है। महिलाएँ और बच्चे भी इससे रक्षित नहीं हैं। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि भारतवर्ष के ग्रामीण अंचलों में १० साल से ऊपर की आयु के प्रत्येक २० में से १५ व्यक्ति और प्रत्येक २० महिलाओं में से ८ धूम्रपान की अभ्यस्त हैं। जब यह समस्या इतनी व्यापक हो तो इसके विकट होने में भी कोई अस्वाभाविकता नहीं। धन के इस रूप में अपव्यय के कारण आर्थिक विषमता और उसके कारण पारस्परिक कलह का होना भी स्वाभाविक है। दयनीय दशा तो रहेगी ही। नयी पीढ़ी का पोषण और उनका सुनिर्माण भी ठीक रीति से सम्भव नहीं होगा। नवजात शिशु दुर्बल और रोगी होंगे तो पारिवारिक संकट और भी गहरा जायगा। दुःख, पीड़ा, शोक और चिन्ता का ही वातावरण बना रहेगा। व्यसनियों की त्रासद रोग-पीड़ा से भी हा-हाकार मचा रहेगा। ऐसी स्थिति में परिवारों में टूटन आना अवश्यंभावी है। इस दुर्दशा के जो मूल कारण हैं—वे व्यसनीजन भी परिजनों के लिए घृणा, क्रोध और रोष के पात्र हो जायेंगे। सारा वातावरण ही विषाक्त हो जायगा। ऐसे परिवारों के समुच्चय—समाज का स्वस्थ एवं सबल होना असम्भव है। जो लोग जर्दा-धूम्रपान की लत में पक्के हो जाते हैं उनकी यौनक्षमता भी घट जाती है। इसका अतिचार तो नपुंसकता को भी जन्म देता है। ऐसे में स्वस्थ दाम्पत्य सम्बन्ध भी खतरे में पड़ जाते हैं और एक अन्य विचित्र ही समस्या उठ खड़ी होती है जो पारिवारिक विखण्डन का कारण भी बनती है—तनाव ग्रस्तता तो उससे होगी ही होगी। मनोवैज्ञानिक आघात इससे स्वाभाविक ही है।

तनावग्रस्त और चिन्तित लोगों के लिए धूम्रपान और तम्बाकू सेवन और भी अधिक हानिकारक सिद्ध होता है। ऐसे लतखोरों की संख्या जिस समाज में जितनी अधिक होगी—वह समाज उतना ही पिछड़ा टूटा हुआ, अशान्तिग्रस्त और पीड़ित रहेगा। आश्चर्य की बात यह है कि दुर्भाग्यवश हमारा देश और समाज दिनोंदिन इस अधःपतन की ओर तीव्रता से ही बढ़ा चला जा रहा है। विगत पन्द्रह वर्षों में इस व्यसन से ग्रस्त लोगों की संख्या का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इंगलैण्ड में और अमेरिका में ४० व्यसनियों में से क्रमशः ४ और १० ने इस व्यसन का परित्याग किया है, जबकि भारत में १२ नये व्यसनियों की बढ़ोतरी हुई है। यह हमारे देश और समाज का दुर्भाग्य ही कहा जायगा।

चिकित्सा विरोधी कुप्रभाव

धूम्रपान और जर्दा-सेवन के व्यसन का एक और दुष्परिणाम यह होता है कि अनेक रोगों की चिकित्सा में इसके कारण व्यवधान उपस्थित हो जाते हैं। जिन गर्भस्थ शिशुओं पर स्वयं माता के धूम्रपान का अथवा माता के माध्यम से पिता के धूम्रपान का प्रभाव हो जाता है, वे विकलांगता आदि असाध्य रोगों के शिकार तो हो ही जाते हैं, उनकी रोग प्रतिरोधी क्षमता भी बहुत कम हो जाती है। परिणामतः उनके रुग्ण हो जाने पर रोगी की ओर से चिकित्सा को सहकार नहीं प्राप्त हो पाता और उनका नीरोग होना कठिन हो जाता है। माता के विषाक्त रक्त से पोषित होने के कारण ऐसे शिशुओं के रोग भी कभी-कभी असाध्य हो जाते हैं। ये संक्रामक रोगों को भी अतिशीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। और उनका उपचार दुष्कर हो जाता है। निमोनिया रोग भी ऐसा है कि उपचार के दौरान यदि रोगी धूम्रपान-परित्याग न करे तो चिकित्सा सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हो जाती हैं और रोग विद्रूप अवस्था ग्रहण कर लेता है। हृदय रोग एवं दमा विशेषज्ञ डॉ. वीरेन्द्र सिंह का मत है कि—"हृदय रोग और रक्तचाप, दमा आदि रोगों से मुक्ति हेतु जो औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं, यदि धूम्रपान का त्याग रोगी द्वारा न किया जाय तो उन औषधियों का पूरा प्रभाव नहीं हो पाता।"

अमूल्य समय का विनाश

मानव-जीवन की सफलता का रहस्य ही समय का सदुपयोग है। समय मनुष्य मात्र के लिए अमूल्य निधि है। विचारपूर्वक, समय का उपयोग जो करते हैं वे ही उपलब्धियों के स्वामी होते हैं। धर्म और कर्म—दोनों का मर्म ही समय के समुचित यापन में ही निहित है। धूम्रपान इसी बहुमूल्य समय का निर्दयतापूर्वक विनाश कर देता है। ऐसा माना जाता है कि यदि कोई दिन भर में दो पैकेट सिगरेट पीता हो तो वह कम से कम ३ घंटे नष्ट कर देता है। इस समय में वह अपने काम-काज से च्युत रहता है। मनुष्य औसतन ८ घंटे तो सोया रहता है। अर्थात् उसका कार्यशील समय लगभग १६ घंटा रहता है। इसमें से यदि तीन घंटा धूम्रपानवश निष्क्रिय रह जाता है तो मानना होगा कि उसने लगभग २० प्रतिशत समय मिथ्या गवाँ दिया। यदि कोई साठ वर्ष की आयुष्य भी जीता है तो इस प्रकार १२ वर्ष का समय सदुपयोग में नहीं आया। उसका केवल ४८ वर्षों का समय ही कार्यों में लगा। इतनी आयु में जो प्रगति और उपलब्धियाँ हो सकती हैं उतनी ही उसकी ६० वर्षों की कमाई रह जायगी। ऐसी स्थिति में जीवन की दौड़ में उसका पिछड़ जाना स्वाभाविक होगा। 'आराम हराम है'—यह मन्त्र जिस देश की प्रगति के लिए अनिवार्य आधार हो, उसकी आधी से अधिक जनता यदि इतना समय अविचारपूर्वक नष्ट कर देती हो तो उस राष्ट्र के उत्थान के आसार मन्द होंगे ही।

यह सत्य है कि तम्बाकू में जो निकोटीन नामक तत्व है वह मस्तिष्क को कुछ आनन्द और विश्राम की प्रतिक्रिया अवश्य देता है। किन्तु यही निकोटीन अनेक भयावह रोगों और विकारों का जनक भी हो जाता है। जर्दा-धूम्रपान का जो क्षणिक सुख है वह व्यक्ति, परिवार, समाज और देश के लिए पतनकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर विकट समस्याएँ खड़ी कर रहा है। ऐसी स्थिति में सोच-विचार की आवश्यकता गम्भीर रूप ले चुकी है। इस व्यसन की अन्धी दौड़ तो हम बहुत दौड़ लिए, साँस भर आयी है और शरीर शिथिल हो गया है। अब तो वह समय आ गया है कि जब हम थम कर मनन करें—क्या इस व्यसन को त्याग देना हमारे लिए हितकर ही

नहीं, अनिवार्य भी हो गया है। निष्ठापूर्वक यदि हम विचार करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि—

तम्बाकू की लत को छोड़ो।
सच्चे सुख से नाता जोड़ो ॥

जितना ही शीघ्र हम सचेत होंगे उतना ही हम स्व और पर कल्याण में सफल होंगे। इसी प्रकार हम नियति को स्ववश में कर सकेंगे और सुशुप्त सौभाग्य को जागृत कर सकेंगे।

■■

८

तम्बाकू व्यसन के 'पंचमकार'

□ मनुहार, □ मजा, □ मजबूरी, □ मांदगी, □ मौत

पाश्चात्य साहित्य में तम्बाकू के लिए एक बहुत ही मृदुल शब्द—'लेडी निकोटियान' प्रचलित है। इतने घातक व्यसन की मूलाधार होते हुए भी जर्दे के लिए ऐसे कोमल प्रयोग को देख कर आश्चर्य तो होता है, किन्तु इसके पीछे जो रहस्य है उससे अवगत हो जाने पर इन दो शब्दों में जो परस्पर विरोध प्रथम द्रष्ट्या रूप में दिखायी देता है, वह ऊपर-ऊपर का ही रह जाता है, वास्तव में विरोध न रह कर वह विरोधाभास मात्र लगने लगता है। निकोटियन कहने के पीछे तो यह कारण है कि तम्बाकू में एक घात पदार्थ-निकोटीन है। अनेक कीटनाशक दवाओं में निकोटीन का प्रयोग होता है—इतत्व की विषयमयता इसी से सिद्ध होती है। किन्तु तम्बाकू है बड़ी लुभावनी वस्तु। चाहे धूम्रपान किया जाय, अथवा इसका पान में प्रयोग किया जाय, अथवा चबाने-चूसने के रूप में इसका इस्तेमाल हो—हर रूप में यह आनन्ददायिनी होती है। बड़ी प्रिय और मादक होती है तम्बाकू। इसके चहेतों के लिए तो यह बड़ी सरस होती है। यही कारण है कि इसे लेडी निकोटियन कहा जाता है। भारतीय परम्परा में 'विषकन्या' इसके लिए पर्याप्त उपयुक्त विशेषण हो सकता है। है तो यह एक रमणी के समान मनोहारिणी, आकर्षक और सुरम्य, किन्तु यह घातक भी है।

धूम्रपान, खैनी, गुटखा, तपकीर या जर्दे का पान किसी भी रूप में इसका उपभोग किया जाय—उपभोक्ता इसके प्रशंसक हुए बिना नहीं रहता। प्रियतमा से भी कुछ अधिकता की श्रेणी में वे लोग तम्बाकू को रखते हैं। इसका वियोग असहनीय होता है। इसका सान्निध्य खो कर तो इसके प्रियजन अधीर और व्याकुल हो उठते हैं। और उन्हें स्थैर्य, धैर्य, शान्ति और कल तब ही मिल पाती जब तम्बाकू रानी से इनका पुनर्मिलन हो जाता है। उपभोग के समय वे इसकी दुखद और यातनामय चरम परिणति को विस्मृत कर इसके सुखद रस में ही निमग्न रहते हैं।

जर्दा-धूम्रपान का प्रभाव ही कुछ ऐसा होता है कि जो इसके सम्पर्क में नहीं आते हैं, वे तो भयाक्रान्त और आतंकित ही रहते हैं। वे बच-बच कर चलते हैं कि कहीं एक पत्ती तम्बाकू भी खाने में न आ जाय। यदि कभी ऐसा हुआ तो चक्कर आ जाने या कै हो जाने के भय से वे थरथराते रहते हैं। किन्तु प्रायः लोग इसके जाल में फँस ही जाते हैं और तब अकाल मौत उनकी क्रूर नियति बन जाती है। स्वेच्छा से इस रूपवती घातिन का वरण करने वाले तो बहुत कम ही होंगे। वे किसी न किसी परिस्थिति में आग्रह-अनुरोध जिज्ञासादि के वशीभूत होकर ही इस व्यसन क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं। इस प्रवेश से महाविश्राम तक की उपभोक्ता की दशाओं अथवा तम्बाकू की लीला यात्रा को पाँच पड़ावों में विभक्त किया जा सकता है। ये ही पंचमकार हैं—

मनुहार—मजा—मजबूरी—मांदगी (रोग)—मौत

मनुहार

मनुहार व्यसन की पहली सीढ़ी हुआ करती है। इस सोपान पर चढ़ने को कोमलवय के किशोरों का मन तो पहले से ही ललक रहा होता है और जब मनुहार या आग्रह किसी ओर से आता है तो मानो उसकी मनोकामना की पूर्ति का द्वार खुल ही जाता है। घर में बड़े-बूढ़ों को धूम्रपान करते वह देखता है। एक जिज्ञासा का भाव उसके मन में इससे जाग जाता है। कभी-कभार उनके फेंके हुए बीड़ी-सिगरेट के ठूँठे (बचे हुए टुकड़े) लुक-छिपकर होठों में दबा लेता है और किशोर इस प्रकार धूम्रपान

के आनन्द की खोज पर बढ़ता है। अपने संगी साथियों में धूम्रपान की कुटेव का असर भी उस पर होता है। ऐसे पथभ्रष्ट बच्चे चोरी-चोरी धूम्रपान करते हैं तो उसकी चोरी न खुले इस उद्देश्य से वे अन्य मित्रों को भी इसी राह पर लगा देते हैं। मित्र का अनुरोध मानने को किशोर के मन की जिज्ञासा भी दबाव डाल रही होती है। सोचता है एक-दो फूँक खींच लेने में तो हानि ही क्या है। हम कौन—रोज-रोज धूम्रपान करते ही रहेंगे। मित्र का दिल भी रह जायगा और...। यों नई पीढ़ी चढ़ती है उस राह पर जिसका अन्जाम होता है महाविनाश। और धीरे-धीरे वह इस चस्के का दास होने लगता है। फिर तो मनुहार की आवश्यकता नहीं रहती है। इसके विपरीत वह अपने साथियों की मनुहार करने लगता है। और यों यह सिलसिला आगे बढ़ता ही चला जाता है। सारी पीढ़ी ही व्यसन की गुलाम होती चली जाती है। एक दूसरे के अनुकरण पर तम्बाकू के अन्यान्य रूप भी अपनाव में आने लगते हैं। जर्दे का पान, खैनी, पानपराग सभी अभिकरण नौजवानों को अपनी आसामियत में लेने लगते हैं और इस प्रकार जर्दा-धूम्रपान की विध्वंसक लत हमारी युवा पीढ़ी को अपनी गिरफ्त में ले लेती है। समाज के इस अहम् वर्ग को इस प्रकार आनन्दित देख कर महिलाएँ भी आकर्षित होती हैं—यह नये फैशन और आधुनिक होने की पहचान बन जाती है—पुरानी मर्यादाओं को पिछड़ापन मान कर युवतियाँ उसे छोड़ कर नयी डगर पकड़ती हैं। महिला छात्रावासों में धूम्रपान की बड़ी गम्भीर समस्या इस तरह अस्तित्व में आने लगी है। आज तो ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ भी इस गिरफ्त में बुरी तरह जकड़ी हुई हैं। कितना दुखद तथ्य है कि भारतवर्ष की आधी से भी अधिक जनसंख्या आज इस व्यसन की भक्त है।

मजा ही मजा

जब एक बार चाहे किसी भी प्रकार से हो पर कोई व्यक्ति जर्दा-सेवन-धूम्रपान आरम्भ कर देता है तो वह उसमें आनन्द पाने लगता है। जैसा कि पूर्व पंक्तियों में उल्लेख किया गया है, तम्बाकू में निकोटीन नामक तत्त्व निहित होता है। यही तत्त्व इस विष कन्या का विष भी है

और यही इसकी मोहिनी भी है। यही तत्त्व व्यसनी को मौज मस्ती का अहसास कराता है। यही वह मजा है जिसे जर्दा-सेवन का तथाकथित सुपरिणाम माना जाता है। बीड़ी-सिगरेट का कश या खैनी गुटखे की फंक्की मस्तिष्क में कुछ ऐसी प्रतिक्रिया देने लगती है कि एक झूम-सी अनुभव होने लगती है। यही वह स्थिति है जो नशा कहलाता है। वस्तुतः तम्बाकू का निकोटीन तत्त्व मस्तिष्क को क्षणिक रूप से एक विशेष प्रकार का विश्राम और राहत देने की भूमिका निभाता है। थके हुए लोग इसी कारण इस में आनन्द अनुभव करने लगते हैं। शरीर में यह नशा एक विचित्र प्रकार का शैथिल्य और ढीलापन सृजित कर देता है। यह आराम है। इस आराम के लोभ में वह यह भूल जाता है कि नशा हराम है। वह तो यह युक्ति निकाल लेता है कि—"आराम हो चाहे हराम—दोनों में बसता है राम"। ऐसे-ऐसे कुतर्कों के सहारे वे लोग अपने मजे को जारी रखते हैं।

यों व्यसन शौक और अभिरुचि में परिणत हो जाता है। इस शौक के सहारे अपने व्यक्तित्व को निखारने और रौब-दाब बनाए रखने को भी इस व्यसन को बढ़ाते चलते हैं। अपने अहं की तृप्ति का भी इसे साधक मान बैठते हैं। सिगरेट के हर कश के साथ उसे इस अनुमति से आत्मतोष होने लगता है कि वह सभ्यता की दौड़ में आगे बढ़ता चला जा रहा है, वह किसी से पीछे नहीं है। अपने अहं को पोषित करते रहने के क्रम में व्यसनी अपने व्यसन को अधिकाधिक बढ़ाते चलते हैं। यथार्थ की झलक पाने वाली दृष्टि मन्द हो जाती है। वे वर्तमान के सीमित क्षेत्र तक ही देख पाते हैं और मजा लेते रहते हैं। उन की दूर दृष्टि विफल हो जाती है। वे भविष्य की दुर्गति का आभास भी नहीं कर पाते।

मजबूरी

मजा के पश्चात् तृतीय सोपान मजबूरी का ही है। तम्बाकू सेवन-धूम्रपान का जो शौक मजे-मजे में व्यक्ति गले लगा लेता है—कालान्तर में वही गले पड़ जाता है। व्यसनी का अपना व्यसन जारी रखने के लिए विवश हो जाना पड़ता है। समय व्यतीत होने के साथ उसकी यह आदत पक्की हो जाती है। उसे तम्बाकू की लत लग जाती है। यह लत ऐसी

स्थिति उत्पन्न कर देती है कि अब व्यसनी के लिए 'जर्दा-धूम्रपान' न निगलते बनता है और न उगलते। उसे व्यसन के विकारों और हानियों का आभास हो जाय, उसे अपने स्वास्थ्य पर हो रहे कुप्रभाव दिखायी देने लगे, रोगों के लक्षण प्रकट होने लगे—तब भी वह मजबूर होता है, व्यसन का परित्याग नहीं कर पाता। इसी प्रकार तो पंचमकार का चक्र पूर्ण होता है। यही मजबूरी व्यसनियों के वर्ग को व्यापक से व्यापकतर करती चलती है। इस स्थिति में व्यसनियों को दुष्परिणामों का ज्ञान हो जाने पर वे व्यसन से मुख नहीं मोड़ पाते और एक प्रकार से वे आत्मघात की ओर अग्रसर होते हैं। वह जानता है कि अब भी इस लत का परित्याग कर देना मंगलकारी है, हानियों को सीमित किया जा सकता है, किन्तु वह परित्याग की ओर उन्मुख नहीं हो पाता।

वस्तुस्थिति यह है कि इसी सोपान पर व्यसनी आत्मकल्याण की ओर उन्मुख हो सकते हैं। उन्हें दृढ़ संकल्प के साथ जर्दा-धूम्रपान का परित्याग कर देना चाहिए। धीरे-धीरे इसका परित्याग सम्भव नहीं होता। एक झटके में ही पूर्णतः परित्याग का कदम उठाया जाना चाहिए। मन में यह आशंका नहीं आनी चाहिए कि इतने लम्बे समय तक व्यसनग्रस्त रह चुकने के बाद भला परित्याग से मुझे कोई लाभ नहीं हो सकेगा। व्यसन मुक्ति का लाभ अवश्यम्भावी रहता है। हृदयरोग और कैंसर की आशंका घटती है। ऐसा ही निमोनिया, टी. बी., अल्सर जैसे भयावह रोगों के साथ ही होगा। आवश्यकता मजबूत इरादे की ही है। फिर यह रास्ता खुद-ब-खुद आसान हो जाता है। अपने परिवार का भविष्य टटोलकर देखने से, अन्य व्यसनियों का संग छोड़ने से, व्यसन के शिष्टाचार के प्रति अनास्था जागृत कर लेने से, जर्दा छोड़ने के लाभों के बार-बार स्मरण करने से परित्याग का संकल्प सुदृढ़ होता है। संकल्प धारण कर लेने पर व्यक्ति स्वयं की ही एक कसौटी पर परीक्षा आरम्भ हो जाती है, उस पर खरा सिद्ध होने की दृढ़ कामना उसे विकसित करनी चाहिए। साथ ही उसे सत्कर्मों में व्यस्त रहना चाहिए। इस बात की भी प्रबल आशंका रहती है कि मन विचलित और अधीर होकर पुनः व्यसन की ओर बढ़ने लगे, जर्दा उपभोग की ओर भटकने की अन्तःप्रेरणा जागे—उन क्षणों में कोई विकल्प

अपनाना भी लाभकारी रह सकता है, मुँह में लौंग-सुपारी रखी जा सकती है। यदि व्यसनी मजबूरी को तोड़कर इस प्रकार व्यसन-त्याग में सफल रहते हैं तो वे आत्मकल्याण में कामयाब हो सकते हैं।

मान्दगी

व्यसनीजन जब जर्दा-धूम्रपान का परित्याग नहीं कर पाते हैं तो उनकी यह मजबूरी भी अनेक विभरस, असाध्य और घातक रोगों को आमन्त्रित करने को मजबूर हो जाती है। तम्बाकू उपभोग का परिणाम इन घातक रोगों के रूप में अवश्यम्भावी रहता है। भयावह रोग कई कारणों से सम्भव होते हैं, किन्तु इन कारणों में जर्दा-धूम्रपान का कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मुँह, गले व फेफड़े के कैंसर के रोगियों में से ९० प्रतिशत के पीछे यही कारण होता है। मूत्राशय, गुर्दे, उदर, गर्भाशय के केंसर के अधिकांश रोगी भी इस व्यसन में ग्रस्त पाये जाते हैं। इस व्यसन से ग्रस्त लोगों के हृदयरोग की आशंका भी अन्य लोगों की अपेक्षा १५ गुनी अधिक पायी जाती है। धूम्रपान करने वालों में से लगभग एक तिहाई को दमा का रोग तीव्र रूप में होता है। इन लोगों को ब्रेनहेम्रेज, रक्तचाप और लकवा जैसे दयनीय रोग भी अधिक घेरते हैं।

धूम्रपान करने वाले लोग आत्महानि तो करते ही हैं, वे अन्य जनों का भी अमंगल करते रहते हैं, जो स्वयं इस व्यसन में ग्रस्त नहीं हैं। धूम्रपान के दौरान व्यसनी के मुख से जो धुआँ बाहर आता है, समीप के लोगों को अपनी साँस में वह धुआँ निगलना पड़ता है। व्यसनी के लिए यह धुआँ जितना खतरनाक होता है—इन लोगों के लिए भी वह वैसा ही खतरनाक रहता है। हाँ, मात्रा के अनुसार यह हानि अधिक या न्यून अवश्य रहती है। चिकित्साशास्त्रियों का मत है कि व्यसनी द्वारा १३ सिगरेट पीने पर एक सिगरेट जितना धुआँ पास वालों के फेफड़ों में जाता है। इसी प्रकार गर्भवती महिलाओं का धूम्रपान उनके गर्भ के बच्चे के लिए खतरनाक हो जाता है। बच्चेदानी पर धूम्रपान का विष छा जाता है, बच्चे को पूरा ऑक्सीजन नहीं मिल पाता, उसका आकार और भार कम रह जाता है और वे संक्रामक रोगों से लड़ने की शक्ति भी बहुत सारी खो

देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि गर्भवती महिला स्वयं धूम्रपान नहीं करती, उसका पति ही उसका अभ्यस्त है किन्तु पति के संसर्ग में रहने से महिला और महिला से उसका गर्भस्थ शिशु कुप्रभाव ग्रहण करता है और रोगग्रस्त हो जाता है। आश्चर्य है कि इतने भयावह और मारक रोगों का कारण होते हुए भी जर्दा-धूम्रपान का व्यसन असंख्यजनों के लिए भारी आकर्षण का कारण बना हुआ है। सब कुछ जानकर भी लोगों का इसे गले लगाए रखना क्या 'आत्महत्या' के प्रयास जैसा नहीं है!

मौत

पंचमकार की इस यात्रा का अन्तिम पड़ाव 'मौत' है। यहाँ यह क्रम स्थगित हो जाता है और पीछे छोड़ जाता है निराशा, दुःख और शोक का वातावरण। एक चिकित्सक का कथन है कि यदि जर्दा-धूम्रपान नहीं होता तो कैन्सर से पीड़ित ९० प्रतिशत रोगी जो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं जीवित और स्वस्थ होते। हृदयाघात से मरने वाले रोगियों में से भी ५० प्रतिशत इस व्यसन के सेवी होते हैं। दमा से जिनकी मौत हो जाती है ऐसे अभागों में से भी ९० प्रतिशत रोगी इसी जर्दा-धूम्रपान के बेहद शौकीन रहे होते हैं।[1]

जर्दा-धूम्रपान के विषय में यह कथन प्रसिद्ध है कि इस व्यसन को अपनाने का अर्थ है—रोगों को निमन्त्रण देना। वास्तविकता यह है कि ये रोग इतने भयानक और संहारक हैं कि यह तो मौत को दिया गया खुला निमन्त्रण है। स्वेच्छा से ही इस प्रकार मृत्यु जैसी विनाशक घटना को बुलाना—"आ बैल मुझे मार" कहावत को चरित्रार्थ करता है। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में महामारियाँ (चेचक, प्लेग, तपैदिक, मलेरिया, निमोनिया आदि) व्यापक जनसंहार का कारण बनीं, दूसरी और पाँचवीं दशाब्दी में यह भूमिका निभायी विश्व युद्धों ने और छठी शताब्दी के पश्चात् के चार देशों ने जितना व्यापक नर संहार जर्दा-धूम्रपान ने किया है उतना किसी युग में किसी अभिकरण ने नहीं

---

१. डॉ. बीरेन्द्रसिंह—जर्दा-धूम्रपान

किया। "बीसवीं सदी का निर्मम हत्यारा" कहा जाना इस व्यसन के लिए सचमुच सर्वथा उपयुक्त ही है।

क्या आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि भारत में प्रतिदिन ३००० व्यक्ति इस व्यसन की भेंट चढ़ जाते हैं। सत्य है कि हमारे यहाँ प्रतिदिन सड़क दुर्घटनाओं में अनेक लोग दिवंगत हो जाते हैं, किन्तु इसकी अपेक्षा इस व्यसन से मरने वालों की संख्या २० गुनी होती है। हत्याओं के शिकार होने वाले अभागों से भी ये लगभग इतने ही अधिक होते हैं। यह एक सुस्थापित वैज्ञानिक तथ्य है कि अकेली एक सिगरेट भी धूम्रपान करनेवाले की आयु के पाँच मिनट कम कर देती है। धूम्रपान का अभ्यस्त व्यक्ति औसतन १०-१२ सिगरेट तो प्रतिदिन पी ही लेता है। वह यह नहीं जानता कि इस प्रकार वह अपनी आयु का एक घंटा प्रतिदिन कम करता जा रहा है। आश्चर्यजनक चाहे भले ही हो, किन्तु यह तथ्य है, सत्य और यथार्थ। धूम्रपान करने वालों में से एक चौथाई लोगों की मृत्यु इस कारण से अवश्यम्भावी रहती है। सिगरेट उत्पादकों को प्रत्येक सिगरेट पर यह लिखने को कानूनन प्रतिबद्ध कर दिया गया है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। विस्मय है कि धूम्रपान करने वाले इस संवैधानिक चेतावनी को पढ़ते जाते हैं और कश-पर कश लेते रहते हैं—हर कश उनके आनन्द को अभिवर्धित करता चलता है। उसका धुआँ चेतावनी के अक्षरों को धुँधला करता चला जाता है।

सर्व मंगलकारी है—जर्दा-धूम्रपान का त्याग

अब समय आ गया है जब मानव जाति को व्यापक संहार से रक्षित करने के लिए जर्दा-धूम्रपान व्यसन को समाप्त किया जाय। इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि इस दिशा में शासन, सामाजिक संगठन आदि क्या कर सकते हैं? करने को तो इनके द्वारा भी बहुत-कुछ किया जा सकता है किन्तु केवल कानून बना देने मात्र से सिद्धि असंदिग्ध नहीं हो जाती। चौतरफा कोशिशें अनुकूल वातावरण तो निर्मित कर सकती हैं, किन्तु सच्चा और सार्थक प्रयत्न उन्हीं लोगों के द्वारा किया जा सकता है, जो इससे पीड़ित हैं। उन्हें दृढ़ मनस्कता के साथ तम्बाकू व्यसन को छोड़ने

का आत्मनिर्णय लेना होगा और इस निर्णय पर अडिग रहना होगा। प्रथमतः तम्बाकू के प्रति उनके मन की आसक्ति इसमें बाधक बन भी सकती है, किन्तु इसे नकारते ही रहना पड़ेगा। एकाकी न रहकर लोगों से घिरे रहने की प्रवृत्ति उन्हें विकसित करनी चाहिए—ऐसे लोगों से जिनके समक्ष उन्होंने अपने इस निर्णय को उजागर ही नहीं कर दिया, उनके सामने वे इसे पुनः-पुनः दोहराते भी हैं। इससे उत्पन्न नैतिक दबाव उनके मन को सशक्त बनाएगा। यह आत्मविश्वास उन्हें बढ़ाना चाहिए कि शुभ मार्ग पर चलना कुपथगामिता से अधिक सुगम और श्रेयस्कर होता है और वे इस पथ पर चलते रहने की क्षमता रखते हैं। 'मन के हारे हार है और मन की जीते जीत'—इसे पल्ले बाँध लें—उनके शुभ संकल्प की पूर्ति के पक्ष में सर्वदिशाओं से सहकार ही सुलभ होगा। ऐसा करके वे आत्मकल्याण ही नहीं सर्वमंगल भी करेंगे।

■■

६

और···यों हो जाता है कोई शराबी!

"मनुष्यो तुम सिंह के सामने जाने में भी भयभीत न होना; क्योंकि वह पराक्रम की परीक्षा है। तलवार के नीचे सर झुकाने में भी भयभीत नहीं होना; क्योंकि यह बलिदान की कसौटी है। किन्तु मद्यपान से सदा भयभीत रहना; क्योंकि वह पाप व अनाचार की जननी है।"

भगवान् गौतम बुद्ध का यह संदेश मानवजाति के लिए एक अत्यन्त हितकारी निर्देश है, जो मनुष्य को मनुष्य बनाये रखता है। मदिरा-पान की विभीषिका का आभास तो इससे हो ही जाता है, इसके पतनकारी प्रभाव भी आलोकित हो उठे हैं। संसार के सभी धर्मों में मदिरा का निषेध किया गया है। इसलाम प्रवर्तक पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब ने उसे "सभी पापों की जड़" कहा है तो सिक्ख धर्म के संस्थापक आदि गुरु नानक साहब ने कहा है कि मदिरा मनुष्य के सभी सत्कर्मों को नष्ट कर देती है—"मदिरा सेवन करने वाले के तीर्थ-स्नान, व्रत नियम—सबके महात्म्य नरक में पड़ जाते हैं।" महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मद्यपान को इस रूप में वर्णित किया है कि यह 'मनुष्य को राक्षस बना देता है' और यही भाव ऋग्वेद में भी पाया जाता है—"मदिरा मनुष्य को पापी बनाती है।" प्रभु यीशू मसीह ने भी मदिरा को कुत्सित, धर्मच्युत और अनैतिक बताया है।

जीवन तो वास्तव में एक फूल है जो खिल जाय तो वाह! और मुरझा जाय तो आह! आश्चर्य है कि मदिरा का मार्ग अपना कर हम

आह! की ओर बढ़ रहे हैं, फिर भी वाह! करते जा रहे हैं। मदिरा-भक्तों को यह देखकर बड़ा सुख मिलता है कि मदिरा तो बेजान शीशे (बोतल) को भी सुनहरी-रंगीन बना देती है। वह धड़कते दिल को क्यों न रंगीला बना देगी। वास्तविकता यह है कि शराब एक राक्षस है जो जब तक बोतल में बन्द है तभी तक मजबूरन निष्क्रिय रहता है। बोतल से आजाद हुआ कि महाविनाश की प्रचण्ड लीला में लीन हो जाता है। कितने घर उजाड़े हैं इस राक्षस ने, कितनों के प्राणों का अकाल हरण किया है, कितनों को अनाथ और बेसहारा किया है इसने और करता ही जा रहा है। यह राक्षस तो इतना शक्तिशाली है कि शहर-के-शहर उजाड़ता जा रहा है। भयानक रोग इसके अदृश्य अस्त्र-शस्त्र हैं। वह मनुष्य की सभी अच्छाइयों को नष्ट कर देता है और बुराइयों को पक्का बना देता है। एक यहूदी कहावत है कि शैतान जहाँ नहीं पहुँच पाता है, वहाँ वह शराब को भेज देता है। शैतान का काम है मनुष्यता का नाश करना। इसीलिए तो इसलाम धर्म की हिदायत है कि शराब की एक बूँद भी जिस अंग को छू ले उसे काट कर फेंक दो।

मदिरा की विनाशकारी और पतनकारी लीलाओं की कोई सीमा नहीं है। वह मनुष्य के ज्ञान, संयम, सत्य, शौच, दया, क्षमादि परम गुणों को मन्द, अपितु विनष्ट ही कर देती है। आचार्य हरिभद्र सूरि ने योगशास्त्र में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

विवेकः संयमो ज्ञानं सत्यं, शौचं, दया, क्षमा।
माद्यत् पलीयते सर्व तप्यां बहिमकणादिव् ॥

जैसे अग्नि का लघुतम कण भी अपार घास को जला कर भस्मिभूत कर देने को पर्याप्त होता है; शराब भी उसी प्रकार मानव-चरित्र की मानवीयता को ध्वस्त कर देती है।

अधम मदिरा का आधिपत्य क्योंकर

माना जाता है कि १६ करोड़ में से ६ करोड़ परिवार भारतवर्ष में ऐसे हैं जो मदिराधीन हैं। नर ही नहीं, नारियाँ भी इसका आधिपत्य

स्वीकार कर चुकी हैं। बच्चों में यह रोग बड़ी बीभत्सता के साथ व्याप्त होता जा रहा है। यही नहीं, हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ भी हमारे इस कुकर्म का दण्ड भोग रही हैं। पश्चिम के प्रभाव से हमारे यहाँ भी महिलाएँ शीघ्रता के साथ इसके प्रभावक्षेत्र में आती चली जा रही हैं। उनका मदिरापान उनके रक्त में दूषित और विकृत प्रभाव प्रबल बनाता है और उससे उनके गर्भस्थ शिशु पोषित होते हैं। यह नयी पीढ़ी अल्पायु ही रह जाती है। जीवित रहने वाले शिशु जन्मजात रोगी, दुर्बल, क्षीण देही, अशक्त, छोटे कद के, कुरूप और मानसिक रूप से विकृत होते हैं। कभी-कभी तो यह प्रभाव दो-तीन पीढ़ी तक भी चलता है। ज्ञात ही नहीं हो पाता कि किसी शिशु की ऐसी जन्मजात अवस्था का कारण क्या है? क्योंकि उसकी माता मद्यप नहीं। कारण होता है नानी का मद्यप होना, अथवा उसकी भी माता का यह दुर्व्यसन। कभी ऐसा भी होता है कि माता का प्रभाव बेटे-बेटी पर तो होता ही है, उन की आगामी एक दो पीढ़ियों में भी चलता रहता है। मद्यपान न केवल वर्तमान को ध्वस्त कर रहा है वह भविष्य को भी दूषित करने की समर्थ क्षमता रखता है।

क्या अज्ञानता वश ही लोग इस निष्ठुर जाल में अनायास ग्रस्त हो जाते हैं? आंशिक रूप से ही यह बात सच कही जा सकती है। आरम्भ में, अल्पायु में किशोर जब इस व्यसन क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, कदाचित् इस अज्ञानता की कुछ भूमिका उस समय रहती हो कि मदिरा के विनाशक प्रभावों से वे अपरिचित हों। यह अपरिचय भी सम्भवतः कुछ किशोरों तक ही सीमित हो—यह भी सम्भव है। शेष मदिरा के प्रचण्ड स्वभाव से परिचित नहीं तो भी अल्पपरिचित अवश्य होते हैं; तथापि उसे 'गले लगाने' का मोह वे छोड़ नहीं पाते। अनभिज्ञता भी इस स्थिति तक क्षम्य नहीं हो सकती कि मद्यपान अपना प्रभाव उनपर नहीं दिखाए, उन्हें हानिमुक्त अवस्था में रख दे। प्राकृतिक परिणाम तो भोगने ही होते हैं। जो भी हो; अज्ञानता की अपेक्षा अन्य परिस्थितियाँ कारण स्वरूप में, मदिरापान के व्यसनार्थ अधिक सशक्तता के साथ सामने आ खड़ी होती हैं; यथा—आधुनिकता का आग्रह, ऊब का निराकरण, तनाव मुक्ति की

कामना, विलासिता का प्रतीक, अनुकरण की प्रवृत्ति, सहज जिज्ञासा, कुसंगति आदि-आदि।

आचार्य तुलसी ने इस प्रश्न पर विभिन्न दृष्टिकोणों से सघनता के साथ चिन्तन-मनन किया है। उनका निष्कर्ष है—"शराब से स्वास्थ्य, मन, मस्तिष्क और प्रतिष्ठा—सभी पर दुष्प्रभाव पड़ता है, फिर भी मनुष्य शराब पीता है। आखिर ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्न पर विचार किया जाय तो भारतीय परिवेश में शराब पीने के मुख्य कारण हैं—विलासिता, सोसायटी, कुसंगति और अज्ञान।"

अज्ञान की चर्चा तो हो चुकी। अब तनिक उन अन्य कारणों पर विचार कर लिया जाय जो मदिरा-व्यसन के लिए उत्तरदायी हैं। ऐसे कारणों में प्रथमतः सहज जिज्ञासा की स्थिति आती है। अविकसित और अपुष्टमन जिज्ञासु तो होता ही है। अपने इर्द-गिर्द मदिरा का व्यापक व्यवहार देख कर किशोर-मन लुहाभित हो जाय—यह स्वाभाविक ही है। उसका मन इस मिथ्या तर्क को संबल बनाने पर तुल जाता है कि एक बार तो प्रत्येक वस्तु को चखकर जाँच-परख करनी ही चाहिये। कोई वस्तु बुरी नहीं होती—बुरा होता है उसका दुरुपयोग—ये युक्ति उसके मदिरापान के अंकुरित कुविचार को सींचने लगती है। हम नहीं दुरुपयोग करने वाले। देखें तो···कि आखिर कैसा आनन्द मिलता है मदिरा पान में। कौन से हम पक्के पियक्कड़ ही हो जाने वाले हैं। एक-दो घूँट में क्या बनता-बिगड़ता है—ऐसे विचार किशोर को प्रेरित करने लगते हैं। बुराई को मानते हुए भी वह किंचित प्रयोग कर ही लेना चाहता है। उसे कहाँ आभास होता है कि व्यसन से दूर रहो तो वे ललचाते हैं पर पास जाओ तो वे जकड़ लेते हैं और नागपाश बनकर अन्ततः इहलीला का ही पटाक्षेप कर देते हैं। उसके विश्वास का कीर्ति स्तम्भ ढह जाता है कि हम तो एक-दो घूँट में ही इसका आनन्द जान लेना चाहते हैं—कौन-सा इसे रातदिन का साथी बनाना है। और होता यह है कि पहले घूँट का मजा जीवन भर की सजा बनकर रह जाता है। उस आनन्द का वह ऐसा बन्दी हो जाता है कि पहले तो वह मदिरा का पान करता है, फिर मदिरा ही उसका पान कर जाती है। क्रमशः उसका व्यसन तीव्र और दृढ़तर होता जाता है और उसके

समक्ष उसका मन दुर्बल होता रहता है, हथियार डाल देता है। हावी हो जाता है उस पर शराब और वह हो जाता है शराब के अधीन एक विवश और निरीह प्राणी। शेक्सपीयर का कथन यथार्थ ही है कि—"शराब का पहला प्याला मनुष्य को बुद्धिहीन, दूसरा पागल और तीसरा मूर्च्छित कर देता है।" एक बार मदिरा जो अपना चमत्कार दिखाने लगती है तो उसका क्रम बीच रास्ते में कहीं निरस्त नहीं होता। चरम पर पहुँच कर ही वह विराम लेती है।

जिज्ञासाधीन होकर किशोर ने मदिरा चखी तो मदिरा फिर उसे जीवन भर 'मजा चखाती ही रहती है।' ऐसे में यदि उसे मदिरापान करने वालों की संगति जो सुलभ हो गयी तो वह इस आकर्षण का परित्याग भी नहीं पाता। कुमार्गी मित्रों के ऐसे आमन्त्रण को वह अस्वीकार्य नहीं मान पाता। यदि ऐसा मित्रमण्डल सुलभ न हो तो वह स्वयं ही ऐसा वृत्त निर्मित कर लेता है। नये-नये संगियों को वह इस शौक में सम्मिलित करता रहता है और किशोर मद्यपों का एक ऐसा झूमता-इठलाता गिरोह संगठित हो जाता है कि जिसमें व्यसनी एक-दूसरे को पतन के गर्त में ढकेलने का ही प्रच्छन्न प्रयास करते रहते हैं।

किशोर किस प्रकार मदिरा व्यसनारम्भ करते हैं—इस सम्बन्ध में उसके अनुकरण की सहज प्रवृत्ति भी सक्रिय रहती है। घर में बड़े वयस्कजन जब मदिरापान करते हैं तो देखा-देखी वह भी लुक-छिप कर चखना आरम्भ कर देता है। आरम्भ का तथाकथित मजा चस्का बन जाता है और उसकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर दृढ़ से दृढ़तर हो जाती है। फिर कुसंगति अपना रंग चढ़ाने लगती है और अल्पायु में ही वह ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि मदिरापान का कोई अवसर वह चूकना नहीं चाहता। यों आरम्भ हो जाता है मदिरा का महाविनाशक क्रम। ऐसी स्थिति में क्या यह शुभकर और आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि परिवारों में मदिरापान का खुला व्यवहार न हो! क्या यह समीचीन नहीं कि बुजुर्ग लोग यदि पीना ही चाहते हैं तो कम से कम इस प्रकार से कि बच्चों को इसकी भनक भी न पड़े—वे अनुचित प्रभाव से बचे रहें।

कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत जैसे पवित्र आचार-विचार वाले देश

में भी हमारी युवापीढ़ी को यह कहने में संकोच ही नहीं, लज्जा का अनुभव होता है कि वे मदिरापान नहीं करते। किसी मदिरापान का अनुरोध अस्वीकार करना उनकी दृष्टि में न केवल अशिष्ट व्यवहार ही है, वह तो पिछड़ेपन और दकियानूसी का प्रतीक भी है। भला मदिरा के बिना भी कोई सामाजिक जीवन जी सकता है। चिन्तन की धारा जिन युवाओं की इस प्रकार की रहती हो—वे इस प्रवृत्ति को आधुनिक जीवन शैली का एक अभिन्न और अनिवार्य अंग मानते हैं। आधुनिकता एवं फैशन का यदि यही प्रतीक है तो पुरातनता में ही सब का कल्याण निहित है। मद्यपान जिस समाज में आधुनिकता का संतोष देने लगे, उसकी गति क्या होगी—भली भाँति इसका अनुमान किया जा सकता है। जिस देश का यौवन सुरा-सना, उसका दुर्भाग्य अटूट बना। महात्मा गाँधी का यह कथन जब हमें स्मरण आता है कि "एक मदिरा सभी बुराइयों की जननी है। इसकी आदत राष्ट्र को विनाश के कगार पर ला खड़ा कर देती है"—तो उसमें हमारे युवावर्ग की व्यसनप्रियता देखकर प्रत्यक्ष सत्य का साक्षात्कार हो जाता है।

एक और भी उत्प्रेरक मदिरापान के लिए रहता है। मनुष्य का जीवन आज इतना व्यस्त और जटिल हो गया कि उसमें यान्त्रिकता सी नीरसता उत्पन्न हो गयी है। आज का मनुष्य इस नीरसता और एकरसता से ऊब उठा है। इस ऊब के निराकरण के लिए उसे किसी मनोरंजन आश्रय की आवश्यकता अनुभव होने लगी जो उसे मनोविनोद दे सके, उसे सहला-बहला सके और इस खोज के दौरान उसे जो द्वार खुला मिला वह मदिरालय का था। उसने इधर-उधर ताकते हुए सहमे-सहमे से प्रवेश किया और उसने वहाँ जो रंगीन दुनिया देखी तो वहीं का होकर रह गया। धीरे-धीरे वह दरवाजे के बाहर के जगत से कट कर अलग होता गया। भीतर का वातावरण दमघोंटू भी होने लगा, किन्तु वह उस अंधेरे को छोड़कर प्रकाश की डगर पर चढ़ने का साहस भी नहीं जुटा सका और उस अन्धकूप में घुटते रहना ही उसकी नियति हो गयी। उस स्वच्छ, स्वस्थ जीवन की हल्की-सी ऊब से ऊब कर मनुष्य ने जो पाया—उससे ऊबना भी उसे अब उपादेयतापूर्ण नहीं लगता। वह छटपटा कर रह गया।

मदिरा पर रीझने वाले ने एक और भी सुन्दर बहाना बनाया है। आज के जीवन की जो रूपरेखा है उसमें तनाव और चिन्ता का रंग बड़ी गहराई से भरा हुआ है। तनाव मन को विचलित करता है, मस्तिष्क को परेशान और तन को चंचल। इन तनाव से मुक्ति पाने के लिए मनुष्य सहज ही मदिरा की ओर झुक जाता है। मदिरा उसके लिए एक सरस वरदान सिद्ध होती प्रतीत होती है। उसे वह चिन्ता और तनाव से मुक्त कर देती है। उसकी समस्याएँ, उसके कष्ट, उसकी पीड़ाएँ विस्मृत हो जाती हैं। वह तनावमुक्त हो जाता है। पर क्या यह वास्तव में की तनाव मुक्ति है? सोचने का विषय यह है कि तनाव जनक परिस्थितियाँ तो अपने स्थान पर यथावत् बनी हैं। न कारण क्षीण हुआ है न परिणाम लुप्त हुआ है। हुआ है तो केवल यही कि व्यक्ति मदिरा के प्रभाव से चेतना शून्य हो गया है। यह स्थिति उसे तनाव के अनुभव से दूर ले जाने का प्रयत्न ही तो करती है। यह तो स्वप्न में किसी रंक का राजा हो जाने जैसा है। नींद खुली और वही रंकता। नशा उतरा और वही तनाव, वही चिन्ता। ऐसे में मदिरा का आश्रय लेना क्या पलायन करना नहीं है। समस्याओं से भागने से समस्याएँ निस्तेज नहीं हो जातीं। "भागो मत, दुनिया को बदलो"—यही हमारा आदर्श होना चाहिए। मदिरा इस व्यवहार में हमारी सहायता भी तनिक भी नहीं कर सकती। बिल्ली को सामने देखकर कबूतर रेत में गर्दन छुपा ले—तो बिल्ली से क्या उसकी रक्षा हो जायगी। मदिरा का सहारा भी इसी प्रकार निस्सार और मिथ्या होता है। मद्यपान को तनाव मुक्ति का स्रोत नहीं माना जा सकता है, जो ऐसा मानकर इसे अपनाते हैं वे क्षणिक मुक्ति के लिए एक संहारक भ्रान्ति को पाल रहे हैं।

तनाव तो तनाव के कारणों के निरस्त होने पर ही छूट सकता है, मदिरा तनाव को कम भी नहीं कर पाती, इसके विपरीत वह स्वयं ही तनाव बन जाती है जिससे छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। व्यसन स्वतः ही एक तनाव है। मदिरा पर आश्रित होकर व्यक्ति मरण को निमन्त्रण देता है। वह मंथर आत्मघात का प्रयासी हो जाता है। वास्तव में तो आज जीवन में जो भोगवादी दृष्टिकोण प्रबल होता जा रहा है—वही मदिरा व्यसन का एक उत्तेजक कारण है। ज्यों-ज्यों हमारे जीवन से धर्म-चिन्तन

और अध्यात्म तिरोहित होता चला जायगा, त्यों ही त्यों व्यसनों की प्रबलता बढ़ती चली जायगी। हम सुखोपभोगों की महत्ता को स्वीकार करते चलेंगे। वैसे ही मदिरा का आधिपत्य भी दृढ़तर होता चला जायगा। Eat drink and be Marry खाओ, पीओ और मस्त रहो—जीवन का दृष्टिकोण हमें व्यसन अग्रसी ही बनाए रखेगा।

मदिरापान-लत का रूप

नशा एक महाभारी का विकट रूप धारण करके सारे देश में ऐसा छा गया है कि इससे छुटकारे के प्रयत्नों पर ध्यान देना अत्यावश्यक हो गया है। व्यसन साधारणतः पक्के लगाव का भाव व्यक्त करने वाला शब्द है। किसी को लेखन का व्यसन है तो किसी को पुण्य कमाने का, दान करने का व्यसन है। यहाँ व्यसन अपने अमंगल अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। धीरे-धीरे इसका अशुभ अर्थ ही इसका मुख्यार्थ रह गया है। इस सीमित अर्थ में मुख्यतः नशीले पदार्थों का सेवन सम्मिलित किया गया है। जब नशे की सामान्य चर्चा की जाती है तो उससे और भी सूक्ष्म और सीमित अर्थ लिया जाता है वह मदिरापान है। व्यसनों में मदिरापान का कितना प्राधान्य है—यह इससे प्रकट हो जाता है।

व्यसन अपने इस प्रकार के सीमित और संकीर्ण अर्थ में 'लत' का पर्याय बन गया है। जब किसी वस्तु के प्रति मन की वासना अटूट और अति प्रबल हो जाती है, इतनी की वह मनुष्य पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लेती है और हावी हो जाती है, वह लत का रूप ले लेती है। यह आसक्ति ऐसी प्रबल हो जाती है कि उसकी हानिप्रदता का सम्पूर्ण परिचय पाकर, उससे आश्वस्त होकर भी व्यक्ति उसका संग छोड़ नहीं पाता। उसके अभाव में अपने जीवन की वह कल्पना भी नहीं कर पाता। 'जान जाए तो जाए पर जाम छूट ना पाए' यह भाव जहाँ बन जाता हो वहाँ लत अपनी परिपक्वावस्थता प्राप्त कर लेती है।

मदिरापान भी चाहे जिज्ञासाभाव जैसी निरीह अवस्था से आरम्भ होता हो, पर समय रहते यदि सतर्क न हुआ जाय तो उसके लत बन जाने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। मदिरा का वह ऐसा चहेता हो जाता

है कि उस पर अपने प्राण न्योछावर कर देने को तत्पर रहता है। मदिरा व्यक्ति का अधःपतन करती है। एक बार जब व्यक्ति का पतन आरम्भ हो जाता है तो फिर वह निरन्तर अधोगति ही प्राप्त करता चलता है और सर्वनाश पर ही यह गति निरस्त हो पाती है। किन्तु क्या इसका माध्यमिक विराम असम्भव है? यह प्रश्न ध्यातव्य है और चिन्तन की अपेक्षा रखता है।

मदिरापान-जन्य-दुखद परिस्थितियाँ

मदिरा चषक में भरी हुई तो बड़ी सुन्दर, रंगीन और शान्त दिखायी देती है, किन्तु वह व्यसनीजन के भीतर पहुँचकर बड़ा ही उत्पात मचाती है। मद्यप की गतिविधियों से सारा परिवार आक्रान्त रहता है। मदिरा दारिद्र्यकारिणी होती ही है, अतः अशान्ति और कलह के साथ-साथ अभाव और भूख का अड्डा हो जाता है वह घर। बच्चे उचित पोषण के अभाव में दुर्बल, रुग्ण और अशिक्षित-अविकसित रह जाते हैं। मद्यप चाहे गृहस्वामी ही क्यों न हो उसका मान-सम्मान नहीं रह जाता। व्यसनी की कार्यक्षमता घट जाती है—आजीविका की अपर्याप्तता रहती है—परिणामतः अनेक समस्याएँ विद्रूप बन जाती हैं। दाम्पत्य सम्बन्ध भी विकृत हो जाते हैं। भगवान महावीर की वाणी चरितार्थ होने लगती है कि "अपेय पदार्थों का सेवन नरक के द्वार को उद्घाटित कर देता है।"

एक चीनी कहावत है—पहले जाम में आदमी शराब को पीता है, दूसरे जाम में शराब शराब को पीती है, किन्तु तीसरे जाम में तो शराब आदमी को ही पी जाती है। लोक व्यवहार में प्रचलित यह उक्ति वास्तव में लोकानुभव को ही व्यक्त करती है। यह लोक देखा तथ्य है। मदिरा प्राणान्तक सिद्ध होती ही है और मदिरा ऊपर से धोपी नहीं जाती, उसका वरण व्यक्ति स्वयं करता है। खूँटे से बँधे बैल को खोलकर, उसकी रस्सी खींचकर अपने पास बुलाता है। कहता है—आ बैल, मुझे मार। यह इस अर्थ में आत्मघात है—मंद आत्मघात।

मदिरा अलकोहल तत्त्व की प्रधानता रखती है। यही तत्त्व आरंभ में मस्तिष्क को कुछ विश्रामजन्य सुख देता है जो आगे चलकर घातक हो

जाता है। मद्यपान शरीर में अनेक रोगों को जन्म देता है। यही नहीं इसका कुप्रभाव रोगों से संघर्ष करने की शरीर की शक्ति का ह्रास भी करता है। रोग विजयी और हावी होने लगते हैं। अल्कोहल से शरीर की कोशिकाएँ और तन्तु नष्ट होने लगते हैं, तात्कालिक रूप में निष्क्रिय भी हो जाते हैं। इससे शिथिलता आती है, हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं, जीभ लड़खड़ाने और पैर डगमगाने लगते हैं। क्रमशः स्थायी दुबलापन आने लग जाता है। यही अल्कोहल मस्तिष्क के तन्तुओं को जब निष्क्रिय करने लगता है तो व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता का ही ह्रास हो जाता है। एक मद्यप ने राजा के हाथी को रोककर ललकार लगायी—"अरे ओ राजा! बेचता है अपना हाथी? क्या दाम लेगा? लाख, दो लाख'''दस लाख! जो दाम चाहे गिन ले और उतर नीचे। हाथी हमारा हुआ।" दूसरे दिन राजा ने उसे दरबार में बुलाया। कहा—"हाथी खरीदना चाहता है न! ले ले तुझे दस नहीं एक लाख में ही दे दूँगा।" वह व्यक्ति बेचारा पानी-पानी हो गया। शीश झुकाए, करबद्ध निवेदन करने लगा "अन्नदाता'''वह मैं नहीं, शराब बोल रही थी। कल उसने मुझे राजा बना दिया था। आज तो मैं आपका दास हूँ, आपका धोबी हूँ। मदिरा ऐसा विवेकशून्य कर देती है मनुष्य को। वह किसी स्थिति को समझ नहीं सकता, उसमें विचार-पंगुता आ जाती है। इसी स्थिति में वह घोर अनर्थ कर बैठता है। नशे की हालत में वह मनुष्य नहीं रह जाता, पशुवत् हो जाता है।

अधिक मदिरा पान से जिगर शिथिल हो जाता है। आरम्भ में इसका आभास भी नहीं होता, किन्तु अनन्तः यह संहारकसिद्ध होता है। जीवन बीमा कम्पनियों में एक सर्वेक्षण में बीस लाख लोगों के परीक्षण से ज्ञात हुआ कि सामान्य जनों की अपेक्षा मदिरा व्यसनी की आयु लगभग ५० वर्ष कम हो जाती है। मदिरापान से हृदय-रोग, कैंसर, दृष्टि मंदता, उदरशूल, पक्षाघात और घोर उत्पीड़क और घातक रोग हो जाते हैं और व्यसनी अकाल ही काल के गाल में समा जाता है। क्योंकि मदिरापान मस्तिष्क के तन्तुओं को प्रभावित करता है, अतः इससे मिर्गी, विक्षिप्तता और अन्यान्य मानसिक रोग भी हो जाते हैं। एक राजा और उसके वजीर का वार्तालाप प्रसिद्ध है जो मद्यपान के व्यापक संहारक रूप को प्रकट

करता है। राजा प्रश्न करता है और उसका उत्तर देता है—

प्रश्न—हमारी जनता का विनाश करने वाला कहाँ रहता है? **उत्तर**—शीश महल में (बोतल)। **प्रश्न**— उसके संगी साथी कौन हैं? **उत्तर**—दरिद्रता, रोग, कलह और पागलपन। **प्रश्न**—उसका नाम क्या है? **उत्तर**—शराब।

मदिरा-त्याग शुभ है—संभव है

मदिरा जब ऐसी घोर अनर्थकारिणी है तो क्या इसका परित्याग नहीं किया जा सकता। व्यसनियों का विश्वास हो गया है कि नहीं किया जा सकता, किन्तु उसके हितैषियों की मान्यता है कि यह संभव है और यह त्याग अनिवार्य भी है। व्यसनियों के उत्तर में मदिरा के प्रति उनके मोह, अभ्यास की प्रबलता, आसन्न संकटों-समस्याओं के भय और क्षणिक आनन्द की गंध मिलती है। वे या तो इसे छोड़ना नहीं चाहते, या उन्हें यह दुष्कर प्रतीत होता है।

दुष्कर तो है, किन्तु लगन और निष्ठा से इसे सुकर बनाया जा सकता है—चिकित्सकों, समाज सेवियों और जनहितैषियों का यही आत्मविश्वास सफलता का आधार भी बन सकता है। उन्हें मनोविज्ञान-परक उपाय भी करने होंगे और अन्य प्रयत्न भी। यह सत्य है कि व्यसनियों का हृदय-परिवर्तन करना मदिरा-त्याग के लक्षण का प्रथम सोपान है। वह समझने लगे कि यह त्याज्य है—सर्वप्रथम यही नितान्त अपेक्षित है।

एक राजा बुरी तरह इस लत में ग्रस्त था। मदिरापान के आगे वह अपने कर्त्तव्यों, दायित्वों को भी भुला बैठा था। उसे राज-काज में रुचि ही नहीं रह गयी थी। एक मंत्री ने उसे सुधारने का बीड़ा उठाया। एक दिन मंत्री राजा के दरबार में गया। उसने झुककर प्रणाम तो किया, उसके दोनों हाथ पीठ पीछे थे। राजा को आभास हो गया कि वह कुछ छिपा रहा है। राजा ने मंत्री से कड़क कर पूछा—क्या है तुम्हारे हाथ में मंत्री, क्या छिपा रहे हो, हमसे? मंत्री ने तनिक हिचकते हुए कहा—कुछ नहीं हुजूर घोड़ा है? राजा को क्रोध आ गया, बोला—घोड़ा, इस तरह तुम उसे उठा कैसे सकते

हो? सच-सच बताओ, क्या है तुम्हारे हाथ में? मंत्री ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—भूल हो गयी श्रीमान···घोड़ा नहीं, यह तो हाथी है। राजा जब यह उत्तर सुनकर चौंका और बिगड़ा तो मंत्री ने कहा—कुत्ता है श्रीमानेश्वर, कुत्ता है और अन्त में स्वीकार किया कि कुत्ता भी नहीं उसके हाथ में मुर्दा है—शव है। राजा ने कुपित होकर अपना आस्तन छोड़ा और मंत्री के सामने जा खड़ा हुआ। निर्भीक मंत्री ने अपने हाथ आगे को कर दिये। उसके हाथ में मदिरा की बोतल थी। इसे देखकर राजा हर्षित हो गया। मुस्कुराकर पूछा—इतनी सुन्दर वस्तु को छिपाकर तुम झूठ क्यों बोल रहे थे, मंत्री?

मंत्री ने कहा—मैं असत्य नहीं कह रहा था श्रीमान। है तो यह मदिरा ही—किन्तु यह घोड़ा भी है, हाथी भी है, कुत्ता और मुर्दा भी है। पहला प्याला पीकर आदमी हो जाता है घोड़ा। वैसा ही उच्छृंखल और चंचल और दूसरा प्याला पीकर वह हाथी हो जाता है—मदोन्मत्त, मस्त। तीसरा प्याला पीकर वह कुत्ते की भाँति भौंकता रहता है और चौथे प्याले में वह अचेत हो जाता है—मुर्दे की भाँति। अब भी क्या मेरे उत्तरों में आपको असत्य लगता है, महाराज! राजा को इस वाक्य ने झिंझोड़ दिया। उसकी सोयी आत्मा जाग उठी। उसने मदिरा की बोतल को मंत्री से लेकर भूमि पर पटक दिया और कभी भी मदिरा सेवन नहीं करने की प्रतिज्ञा ली। व्यसनी यों छोड़ देता है मदिरापान।

वस्तुतः बोधानुबोध का प्रभाव होता है। अन्तःप्रेरणा का जागरण जब तक नहीं होता तब तक बाह्य प्रयत्न निरर्थक ही रह जाते हैं। मानस को मदिरा-विरोधी बनाया जाय—यह मूलभूत रूप से अनावश्यक है। इसके लिए जनमत और लोकधारणा का निर्माण किया जाना चाहिए। मदिरा-व्यसनी अपनी आदत पर गर्व नहीं, लज्जा का अनुभव करने लगे—वातावरण का निर्माण होना चाहिए। यह शिष्टाचार नहीं, अपितु अशिष्टता का प्रतिमान हो जाना चाहिए। इस बुराई को मिटाने का संकल्प जनहितैषी समाज कर्मियों और सामाजिक संगठनों को ही लेना होगा। अन्यथा, राजतंत्र से इस दिशा में कोई आशा रखना सार्थक नहीं होगा। वह मदिरा के प्रचलन से होने वाली आय (राजस्व) को नहीं छोड़ना चाहेगा। गाँधी

था—कि यदि कुछ समय के लिए भी राज्य की व्यवस्था उनके हाथ में आ जाय तो सबसे पहला काम वे यही करेंगे कि बिना मुआवजा दिये शराब के कारखाने और बिक्री केन्द्र बन्द कर देंगे। मोरारजी भाई देसाई ने कहा—"जब तक शराब देश में रहेगी, तब तक चाहे स्वयं राम जी ही क्यों न राज्य सम्भाल लें—देश उन्नति नहीं कर सकता। ये बातें सिद्धान्त तक ही सीमित रह गयी हैं। व्यवहार में सत्ताधीश इन्हें उतार नहीं सके—वे चाहते भी नहीं। १९४७ में शराब से राजस्व होता था ५० करोड़ रुपये का, कुछ बरसों पूर्व तक वह ४ हजार करोड़ हो गया था। इतनी व्यापकता के साथ मदिरापान का व्यसन फैलता जा रहा है—शासकीय आशीर्वाद और आश्रय पाकर। दिल्ली के आँकड़े हैं कि १९८१ में ७२ लाख बोतलें बिकी थीं वहाँ १९८५ में इनकी संख्या बढ़कर ८५ लाख हो गयी और १९८७ में एक करोड़ चालीस लाख तथा १९८८ में २ करोड़ तक पहुँच गयी। सरकार अपने इस दृष्टिकोण के कारण लोक-कल्याणकारी सिद्ध होती है, अथवा नहीं—यह प्रश्न तो पृथक से ही विचारणीय हो सकता है, किन्तु प्रासंगिक रूप में यही कहा जा सकता है कि समाज को इस व्यसन से मुक्त कराने की दिशा में शासन या राज्य से कोई आशा रखना युक्तिगत नहीं होगा।

भोगवाद की प्रबलता मद्यपान के लिए अधिक प्रेरित करती है। खाओ, पीओ और मस्त रहो—इस दृष्टिकोण को निस्तेज करने के लिए आध्यात्मिक वातावरण को सशक्त करना भी लाभकारी रहेगा। अनुप्रेक्षा द्वारा मदिरा त्याग में अनेक व्यसनी सफल रहे हैं। व्यापक स्तर पर इस साधना का लाभ सुलभ कराया जाना चाहिए। किशोरावस्था से ही नाना कारणों से और विविध रूपों में यह रोग आरम्भ होता है। अतः उसी स्थल पर इस पर प्रहार किया जाना चाहिए। वहीं से मदिरा-प्रतिकूल मानस निर्माण की प्रक्रिया आरंभ होनी चाहिए। पाठ्यक्रमों में इसे स्थान दिया जाय—यह चरण भी प्रभावकारी सिद्ध होगा और ज्ञानियों-ध्यानियों के प्रवचन-उपदेश का भी अनुकूल प्रभाव इस अवस्था में संभव रहेगा। किशोरवय मन कोमल होता है, उसे जैसा चाहें वैसा रूप दिया जा सकता है। इन प्रयत्नों से अनेक किशोर इस अभिशाप की छाया में आने से बच जाएंगे, जो कुछ किसी सीमा तक अभी गये होंगे, वे शीघ्र ही बाहर निकल भागेंगे। देश के भविष्य को उज्ज्वलता मिलेगी। नयी पीढ़ी यह मानने लगे कि "शराब खराब है"—इससे बढ़कर आशाजनक बात अन्य क्या होगी।

मदिरात्याग असंभव है—इस मान्यता के दिन अब लद चुके हैं। आवश्यकता है पक्के इरादे की। व्यसनी व्यसनत्याग का संकल्प करे—बाहरी सहकार उसे मिले, घर परिवार में खोया सद्भाव-पुनः प्राप्त हो जाय तो मदिरात्याग फिर भला कैसे असम्भव रह सकता है।

■■

१०

मद्यपान : समस्या और समाधान

वर्तमान शताब्दी मदिरापान से सर्वाधिक अभिशप्त रही है और चिन्ता एवं चिन्तन का विषय यही बन गया है कि मानवजाति को नवीन शताब्दी में कैसे निर्व्यसन रूप में प्रविष्ट कराया जाय। महाविनाश का जैसा क्रूर ताण्डव मदिरा कर चुकी है—उससे भी उसकी गति श्लाघ और थकित नहीं हुई है। उसका विध्वंसक पराक्रम प्रतियुग में यथावत् रहा है। उसकी विनाशक भूमिका त्रिकाल में अपनी परिव्याप्ति रखती है। भूत, वर्तमान और भविष्य तक को दूषित, कलुषित, विकृत एवं पीड़ित करने की अद्‌भुत क्षमता इस आसुरी वृत्ति में रही है।

अतीत में विनाशक रहा मद्यपान

हमारे पुराण-इतिहास इस तथ्य के साक्षी हैं कि जब-जब भी मद्यपान का प्रचलन बढ़ा है—सर्वनाश ही नियति बनी है। सोमरस के रूप में यह पौराणिक युगों में प्रिय रही तो सुरा के रूप में यह देव संस्कृति में प्रचलित रही। राक्षसों के लिए तो सुरापान न केवल आनन्द, अपितु उनकी आसुरी प्रवृत्तियों के लिए उत्तेजक बनी रही। महाभारत काल में कौरवों का सर्वनाश इसी व्यसन ने किया। द्वारिका का वैभव-विलास सुरा के समुद्र में ही विलीन हो गया था। यादववंश इसी राक्षसी की बलि चढ़ गया था। राजघराने—चाहे वे क्षत्रियों के रहे हों और चाहे मुगलों के, ऐतिहासिक

इतिवृत्त से विदित होता कि सुरा-संयोग से वे अवनत ही हुए हैं। बड़े-बड़े पराभवों के मूल में यही मदिरा रही है। फ्रान्सीसी सेनाधिकारियों ने स्वयं स्वीकार किया है कि द्वितीय विश्वयुद्ध में उनके पराभव का मूलकारण यही मदिरा रही है। यह भ्रान्त धारणा भी बनी रही कि युद्धोत्साह मदिरापान से ही बनता-बढ़ता है। वास्तविकता यही रही कि ऐसे योद्धा तो चेतनावस्था में ही रहे—उत्साह के स्थान पर उन्माद से ग्रस्त रहे और विजय शत्रु पक्ष की होती रही। मदिरा तो अंगों में स्फूर्ति के स्थान पर शैथिल्य भर देती है।

वर्तमान में विनाशक है—मद्यपान

वर्तमान में इस विनाशकारी व्यसन-सामग्री ने अपना और भी अधिक आधिपत्य स्थापित किया है। मदिरा सेवन करने वाले का परिवार आर्थिक दृष्टि से तो तहस-नहस हो ही जाता है—उसकी सामाजिक-प्रतिष्ठा को भी हानि होती है। सभी की घृणा दृष्टि और उपेक्षा ही उसे प्राप्त होती है। कोई ऐसे परिवार के सम्पर्क में ही नहीं आना चाहता। किसी एक सदस्य के दुराचार के कारण सारे परिवार को जो सामाजिक दण्ड भोगना पड़ता है, वह साधारण नहीं कहा जा सकता। परिवार के भीतर भी असभ्यताभरा, कलहपूर्ण और अभाव का वातावरण बना रहता है। महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार होते मिलता है, उन्हें अपमान मिलता है। नयी पौध को कुसंस्कार और अपोषण मिलता है। सबसे अधिक हानि तो स्वयं व्यसनी की होती है। मदिरापान उसके स्वास्थ्य को अपार हानि पहुँचाता है।

शराब मनुष्य के तन-मन, मस्तिष्क के लिए शत्रु है। अभ्यस्त शराबी का जीवन ही नष्ट हो जाता है। उसे स्नेह सम्मान तो मिल ही नहीं पाता, उसका शरीर भी व्याधि-मन्दिर हो जाता है। भाँति-भाँति के रोग उसे घेर लेते हैं। मदिरा मनुष्य की पाचनशक्ति को भी कम कर देती है। उसे भोजन में रुचि ही नहीं रहती। जो खाता भी है तो वह हज्म नहीं हो पाता। दुर्बलता तो इसका सहज परिणाम हो ही जाता है, बदहजमी अनेक रोगों को जन्म दे देती है। रोगों से बचाव की शक्ति भी कम हो जाती

है। स्थायी सरदर्द और उदर पीड़ा से ऐसे लोग सदा ही पीड़ित रहते हैं। रोग तो और भी भयंकर हैं जो इस अभिशाप की देन हैं। मदिरा गले से उतरती है तो तुरन्त ही उसका अल्कोहल प्रभाव रक्त में संचरित हो जाता है। मदिरा मस्तिष्क पर हावी हो जाती है। उसके सोचने-समझने की शक्ति निष्क्रिय हो जाती है, विवेक शून्यता की उन घड़ियों में मद्यप क्या कहता है—क्या करता है—स्वयं उसे ही यह विदित नहीं रहता। उसका आत्मनियन्त्रण ही नष्ट हो जाता है। वह अनीति और अनौचित्य की सभी सीमाएँ लाँघ जाता है। उसकी मनुष्यता नष्ट हो जाती है। उसके भीतर की पाशविकता जागृत और सक्रिय हो जाती है। मस्तिष्क के तन्तुओं की हानि करके यही मदिरा अनेक मानसिक रोगों, विक्षिप्तता उन्माद और पागलपन का कारण बन जाती है। मदिरा ही मिर्गी जैसे रोग की भी जननी होती है। मदिरा-व्यसनी का जिगर भी शीघ्र ही दुर्बल और क्रिया-शिथिल हो जाता है। और उससे भयावह संकट उठ खड़ा होता है। प्रायः अकालमृत्यु इसका स्वाभाविक परिणाम रहता है। हृदय रोग और फेफड़ों के रोग भी मदिरापान से उत्पन्न हो जाते हैं। दृष्टिहीनता भी इसका उपहार बन सकती है और पक्षाघात या अपस्मार जैसे उत्पीड़क तथा परवश बना देने वाला रोग भी हो जाता है।

यह सभी लीलाएँ तो मदिरा वर्तमान में दिखा ही रही है। आज के हिंसा, अपराधवृत्ति पूर्ण वातावरण का दायित्व उस पर कम नहीं है। मद्यपान व्यसनी का पतन एक बार करके रह नहीं जाता। वह तो उसे नीचे से नीचे गिराता ही चला जाता है। मदिरा सब से पहला जो काम करती है वह तो यह है कि मद्यप की आत्मा को ही निस्तेज कर देती है। वह भला-बुरा, नीति-अनीति करणीय-अकरणीय के सारे भेद भूलकर यह मानने लगता है कि पाप नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। वह प्रत्येक कार्य उसकी दृष्टि में शुभ है जो उसे सुरा से साक्षात्कार कराता रहे। मदिरा-प्राप्ति के लिए घर में या घर से बाहर भी वह चोरी करने में कोई अनुपयुक्तता नहीं देखता। लूट-खसोट और ठगी करने में भी वह चूकता नहीं। धन उसके लिए इसी कारण सर्वस्व हो जाता है कि वह उसकी भेंट सुरासुन्दरी से कराने की क्षमता रखता है और उस धन की प्राप्ति के लिए

वह हत्या से भी नहीं चूकता। वैसे भी असंतुलित मनस्क मद्यप कलहप्रिय और क्रोधी हो जाता है। वह इस आवेग में अनेक अपराध कर लेता है। अपराधों के जंगल में सबसे अधिक वर्चस्व इन्हीं मद्यपों का रहता है। कहा जाता है कि दो तिहाई अपराधों के कर्ता ये ही शराबी लोग होते हैं। देश का कितना श्रम, धन और जनशक्ति का इस जघन्य और हेयपदार्थ मदिरा के कारण अपव्यय हो जाता है। यही यदि दीन दुखियों की सेवा में प्रयुक्त हो जाय तो दुःखों-कष्टों की सीमा को बहुत घटाया जा सकता है। वाहन दुर्घटनाओं में कितने निरीह, निरपराध लोगों के जीवन समाप्त हो जाते हैं—कारण है वाहन चालकों का मदिरा सेवन। एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि कानून का पालन कराने के लिए जितना व्यय अमेरिका में होता है उसका आधा धन तो मदिराजन्य अपराधों पर ही हो जाता है। लगभग ऐसी ही स्थिति हमारे यहाँ भी है। अपराध अनेक परिस्थितियों और कारणों से हो सकते हैं, किन्तु लगभग ६०% अपराध (बलात्कार, लूटपाट, हत्या आदि) इसी मदिरा के कारण होने लगे हैं। मुक्त यौनाचार को इस व्यसन ने बड़ा बढ़ावा दिया है। विदेशों में तो बहुत पहले से प्रचलन था। अब भारत में भी स्त्रियाँ पुरुषों के संग मिलकर मदिरापान करने लगी हैं। इससे वैश्यावृत्ति का अनौचित्य मंद होने लगा है और एक अद्भुत अनैतिकता नैतिकता के घेरे में आने लगी है। भारत जैसे सदाचारी और संस्कृति प्रधान देश के लिए यह एक कलंक है। नारी चरित्र का पतन तो भावी पीढ़ियों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होगा।

वर्तमान युग में मद्यपान का व्यसन बड़ी तीव्रगति से बढ़ता चला जा रहा है। प्रबुद्धजनों के लिए यह निश्चित ही एक चुनौती भरा संकट है। किशोरों और युवाओं का इस ओर जो तीव्र आकर्षण है, वह तो अभी भी अधिक चिन्तनीय विषय है। विद्यालयों-महाविद्यालयों में यह महामारी छात्रों की नहीं छात्राओं के लिए भी भीषण विनाश का कारण बन रही है। हर आठ में से तीन परिवार इस भयावह महामारी के शिकार हैं। स्वाधीनता के बाद हमारे देश में मदिरा से प्राप्त होने वाला राजस्व ८० गुना बढ़ गया है। इससे यह सत्य तो प्रतिपादित हो ही जाता है कि बड़ी ही क्षिप्रगति से मद्यपान का रोग हमारे यहाँ बढ़ता जा रहा है—साथ ही

यह भी प्रकट हो जाता है कि हमारा शासन उसे बढ़ावा देने में तनिक भी पीछे नहीं है।

भविष्य भ्रष्टता का प्रतीक—मद्यपान

यह तो चर्चा हुई मदिरा द्वारा अतीत और वर्तमान के विध्वंस की। सत्य तो यह है कि यह पिशाचिनी भविष्य का संहार भी अग्रिम रूप से आज ही कर रही है। जिस देश का यौवन मद्यप हो—उसका भविष्य कैसे पवित्र और उजला हो सकता है। युवावर्ग देश के कर्णधार हैं, वे भविष्य की आशाएँ हैं, उनसे ही अपेक्षा की जाती है कि वे हमारे आज के स्वप्नों को कल साकार करेंगे। काश! हमारी युवा पीढ़ी इस कसौटी पर खरी सिद्ध होती। दुर्भाग्य है कि हमारी युवाशक्ति मदिरा के कुपथ पर ऐसी आरूढ़ हो गयी है कि देश का भविष्य घोर तिमिर से आच्छादित दिखायी दे रहा है।

हमारे यहाँ महिलाओं में मदिरापान का जो तथाकथित फैशन विकसित होता जा रहा है—वह भी देश के भविष्य के लिए एक नया संकट बन गया है। नारी मातृत्व के वरदान से विभूषित होती है। इस मदिरामोह में पड़कर, आश्चर्य है कि नारी स्वयं अपने इस सौभाग्य को दूषित कर रही है। मदिरापान से अल्कोहल व अन्य विषैले पदार्थ नारी शरीर में भी अपनी मात्रा बढ़ाते चलते हैं। उनका रक्त दूषित और विकृत हो जाता है। इस तैयारी के साथ ही वह भावी पीढ़ी का तब स्वागत करती है, जब उसकी कोख में जीव स्थापित होता है। गर्भस्थ शिशु को यही दूषित रक्त पोषित करता है तो उसकी शारीरिक संरचना का विकृत हो जाना स्वाभाविक ही है। ऐसे बच्चे अत्यन्त क्षीणकाय और जन्मजात रोगी होते हैं। इनके हृदय दुर्बल ही नहीं विकृत भी होते हैं। आश्चर्य है कि इस कोमलवय में ही उन्हें जीवित रहने के लिए हृदय प्रत्यारोपण की शल्य क्रिया से गुजरना पड़ता है। अनेक ऐसे शिशु तो प्रत्यारोपणार्थ हृदय की अनुपलब्धि के कारण जीवित ही नहीं रह पाते। जो बच्चे जन्म के पश्चात ही मृत्यु को प्राप्त हो जाने की अवस्था में आ जाते हैं उन्हें चिकित्सकीय पद्धतियों द्वारा किसी प्रकार कुछ समय तक के लिए जीवित रखा जाता

है। इस दौरान उनके गुर्दे, हृदय आदि अंग निकाल लिये जाते हैं और उन रुग्ण शिशुओं के लिए उनका प्रयोग किया जाता है, जिन्हें बचाया जा सकता है। मद्यप माताओं के शिशु भयानक रोगों से घिरे रहते हैं और आजीवन ये रोग उनका पीछा नहीं छोड़ते। ये उन अपराधों का दण्ड भोगते हैं जो उन्होंने कभी नहीं किये। ऐसे रुग्ण शिशु के रक्त परीक्षण से ज्ञात होता है कि उनकी समस्याओं का मूल कारण उनके रक्त में अल्कोहल की मात्रा का आधिक्य है। यह अल्कोहल कहाँ से आया? शिशु ने तो मदिरापान किया ही नहीं। यह परिणाम है इनकी माताओं के मद्यपान का। कभी-कभी तो यह कलुषित प्रभाव ३-४ पीढ़ियों तक चलता है। शिशु पंगु हो जाता है, उसका मस्तिष्क भली प्रकार विकसित नहीं हो पाता। वयस्क शरीर में शिशु का मस्तिष्क बना रहता है। ऐसे बच्चे बड़े होकर भी विक्षिप्त रहते हैं, उनका मानसिक विकास नहीं हो पाता। ये दुबले-पतले, कुरूप और बौने रह जाते हैं। अमेरीका में ऐसे बच्चों की संख्या लगभग ५०-६० लाख प्रतिवर्ष होती है। महिलाओं में मदिरा प्रचलन के अनुपात में भारत में ही यह संख्या कम कही जाने योग्य नहीं है। जिस देश की पीढ़ियाँ ऐसे बच्चों से भरी हों—उसका भविष्य दुर्भाग्यपूर्ण ही होगा और इसका दायित्व भी मदिरापान के व्यसन पर ही है। भगवान महावीर स्वामी का मानव जाति के नाम यह संदेश—

"भविष्य में तुम्हें कष्ट न सहन करना पड़े, अतः अभी से स्वयं को गलत वृत्तियों से दूर रखकर आत्मा को अनुशासित करना चाहिए।" भविष्य की उज्ज्वलता के लिए पुनः-पुनः चिन्तनीय और पालनीय है।

मद्यपान के विनाश से बचाव के उपाय

मद्यपान के इस विकराल विनाशक स्वरूप को देखते हुए ही महात्मा गांधी ने इससे मुक्ति को देशभर के लिए अनिवार्य माना और व्यक्त किया कि—

"मैं भारत का दरिद्र हो जाना पसन्द करूँगा, लेकिन यह कभी बर्दाश्त नहीं करूँगा कि हमारे हजारों लोग शराबी हो जायं। अगर भारत में शराबबन्दी जारी करने के लिए शिक्षा को भी बन्द करना पड़े तो कोई

परवाह नहीं है। मैं यह भारी कामत चुकाकर भी शराबखोरी को बन्द करूँगा।"

महात्मा गांधी की नीतियों पर चलने वाला देश भारत स्वतन्त्रता के पश्चात् भी ऐसा कर नहीं सका। सत्ताधिकारियों ने शराबखोरी बन्द करने के लिए शिक्षा को बन्द करना तो दूर रहा—शिक्षा को मदिरा विरोधी अभियान का उपकरण भी नहीं बनाया। मनुष्य को आज ऐसा वातावरण मिलना आवश्यक हो गया है जिसमें मद्यपान का विरोध हो। किशोरों को यदि शिक्षा क्रम में ही यह सिखा दिया जाय कि मद्यपान हानिकारक है, अनुपयुक्त है, तो उनका मानव आरम्भ से ही मदिरा विरोधी हो जायगा—भविष्य में इसके सुफल अवश्य ही प्राप्त हो सकेंगे।

इस आवश्यकता की महत्ता किसी भी युग में कम नहीं आँकी जा सकती है कि मदिरा का प्रचलन समाप्त करने के लिए एक-एक व्यक्ति को मदिरात्याग के पक्ष में अपना दृढ़ मानस बनाना होगा। यही एकमात्र उपाय है—मदिरा-मुक्ति का। इसी उपाय को सशक्त और प्रभावशाली बनाने के लिए अन्य उपायों को सहायक रूप में प्रयुक्त किया जाना होगा। एक व्यापक जनशिक्षा कार्यक्रम तैयार किया जाय तो उत्तम रहेगा, जिसमें यह तो बताया ही जाय कि किस प्रकार से मद्यपान व्यक्ति के तन-मन-धन, चरित्र और नैतिकता का ह्रास कर रहा है, किस प्रकार वह समाज और देश के लिए घातक और परिवार के लिए विनाशक है। साथ ही इन भ्रान्तियों को भी दूर किया जाना चाहिए कि मदिरापान आधुनिकता, शिष्टाचार, वैभव सम्पन्नता का प्रतीक है। एक मिथ्या विश्वास व्यसनियों में विकसित हो गया है कि मदिरा की लत एक बार लग जाने पर छूट नहीं सकती। इस भ्रम का निराकरण भी किया जाना चाहिए कि मदिरा त्याग का प्रयत्न आरम्भ करने पर कुछ समस्याएँ ऐसी आ सकती हैं जिन पर विजय पाना कठिन है। उनकी निराशा को दूर करने और उनके आत्मविश्वास को सबल बनाने का प्रयोजन ऐसे जनशिक्षा क्रम का उपयोगी अंग सिद्ध होगा—इसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसे शिक्षा क्रम में पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन कठपुतली एवं अन्य लोककला विधाओं का सहारा भी लिया जा सकता है।

कहा जाता है कि एक बार बाबर के सैनिकों ने एक व्यक्ति पर सन्देह कर उसे बन्दी बना लिया। जब बाबर के समक्ष उसे उपस्थित किया गया तो वह उस व्यक्ति के भव्य व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ और उसने ससम्मान उसका स्वागत किया—मदिरा का प्याला उस व्यक्ति को पेश किया गया। इस मनुहार को अस्वीकार करते हुए उसने कहा—

भांग धतूरा सुरापान उतर जाय परभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात ॥

बन्दी और कोई नहीं सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव थे। उन्होंने आध्यात्मिक नशे को वरीयता प्रदान की और कहा—प्रभुनाम के जाप का ऐसा नशा चढ़ा हुआ है मुझे कि वह दिन रात हर समय बना रहता है। मैं अब मदिरा आदि जागतिक नशीले पदार्थों का सेवन क्या करूँ जिसका नशा क्षणिक है, जो रात को चढ़ता है और सवेरे उतर जाता है। इन्हीं गुरु नानक देव ने अन्यत्र कहा है—"मदिरापान करने वालों का तीर्थ-स्थान, व्रत-नियम आदि का सारा पुण्य नष्ट हो जाता है।" मद्यपान करने वालों को ऐसे प्रसंगों से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। उनके हित में अन्य पक्षों द्वारा भी यह अवधारणा स्थापित व प्रचारित की जानी चाहिए कि आध्यात्मिक रुझान बढ़ाने से नशे की प्रवृत्ति स्वतः ही कम हो जाती है। अपने-अपने मतानुसार उपासना-आराधना का क्रम आरम्भ करें और उसे विकसित करते चलें। व्यसन स्वतः पराजित हो जाएंगे।

जैन परम्परा में ध्यान, जाप, अनुप्रेक्षा के बड़े सशक्त साधन हैं जिन को अपना कर व्यसनीजन इस कुमार्ग का त्याग कर सकते हैं। अनुप्रेक्षा का मूल तत्त्व आत्म साक्षात्कार से सम्बन्ध रखता है। चिन्तन की सघनता द्वारा हृदय परिवर्तन को इसमें संभाव्य माना गया है। व्यसन त्यागार्थियों को अनुप्रेक्षा का प्रशिक्षण दिया जाना अपेक्षित है। उन्हें चिन्तन की गहराइयों में ले जाकर इन बिन्दुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करना सिखाया जाय कि मदिरा कितनी घातक है, उसकी कैसी भयावह हानियाँ हैं, वह स्वयं मदिरा से आसक्ति रखकर आत्महानि कर रहा है आदि-आदि। गहन चिन्तन का यह क्रम साधक की भावना में परिवर्तन

लाने में अवश्य ही सफल होगा और भावना का प्रभाव आचरण परिवर्तन के रूप में अवश्य घटित होगा। यों मदिरात्याग में सहकार सम्भव होगा।

मदिरा-व्यसन-त्याग में प्रत्येक वह प्रयत्न सहायक रहेगा जो व्यसनी के त्याग के विचार को पक्का करे, उसके आत्मविश्वास को समृद्ध करे, उसके हृदय परिवर्तन में सहयोगी हो। लोकनायकों और धर्माचार्यों के, समाज सुधारकों और समाज सेवियों के प्रेरक उपदेश भी बाहर वयस्कों के लिए और अभिभावकों का मार्गदर्शन घर-परिवार में किशोरों के लिए सार्थक होंगे। अनिवार्यता इसी बात की है कि वे स्वयं पवित्राचरण के हों, व्यसनी न हों। उनकी समर्थता इस रूप में भी हो कि उनके कथन ही नहीं, उनके व्यावहारिक जीवन से भी मदिरा त्याग की प्रेरणा मिले। ऐसे सज्जनों के प्रयत्न अकारथ ही रहेंगे जो मन से और आदत से मदिरा विरोधी नहीं हैं, मात्र वाचिक रूप में विरोध करते हों। ऐसा होगा तभी उनके स्वर में स्वर मिलाकर व्यसनीजन कह सकेंगे।

मदिरापान अकाल ही, पहुँचाता श्मशान।
सुखमय जीवन जीना है, त्यागेंगे मदपान ॥

■■

११

मदिरा करती है उत्पात्

जिस घर में व्यसन प्रवेश कर जाता है, वह घर नरकतुल्य हो जाता है। व्यसन क्या है? किसी के प्रति तीव्र आसक्ति या अनुरक्ति है। यह आकर्षण इतना सघन होता है कि इसका अभाव दुस्सह हो उठता है। इसके बिना जीवन ही दुष्कर हो जाता है। रोग, दुःख, पीड़ा यहाँ तक कि प्रत्यक्ष मरण की आशंका भी इस आकर्षण को कम नहीं कर पाती। मृत्युभय भी जिसमें नगण्य हो जाय उस मनोवृत्ति को दीवानापन ही कहा जायगा। शास्त्रों में कहा गया है–

"व्यसन मूर्खों की मूर्खता का मूर्धन्य स्वरूप है।"[1]

अपने रूढ़ार्थ में यही व्यसन मादक पदार्थों के सेवन के रूप में पहचाने जाने लगा है। मादक पदार्थों का इतिहास भी अपनी न्यूनाधिक हानिप्रदता के साथ अत्यन्त दीर्घ परम्परा रखता है। ऋग्वेद के सोम रस से लेकर आज के हेरोइन, ब्राउन सुगर तक इस मोहक हत्यारिन विषकन्या का इतिवृत्त परिव्याप्त है। प्रतियुग मे व्यसन ने नव नवीन, तथाकथित आनन्दप्रद और सरस, आकर्षक और रम्य रूप धारण कर मानव को खूब रिझाया है और प्रतियुग में वह अपनी संहारक भूमिका में अत्यन्त प्रचण्ड और वीभत्स भी सिद्ध हुआ है। यह भी एक घातक तथ्य है कि सोमरस जिसका आदि रूप था, वह सुरा या मदिरा ही हर दौर में व्यसनों के

१. "व्यसनेन तु मूर्खाणाम् निद्रया कलहेन वा।"

विविध रूपों में सदा प्रमुख बनी रही है और व्यसन की जब भी चर्चा होती रही है—सभी का ध्यान मद्यपान की ओर ही गया है। स्पष्ट है कि व्यसन का पर्याय बनी यह मदिरा—सर्वप्रमुख व्यसन रही है और व्यसनों के सभी अतिचारों और अनाचारों से यह विभूषित भी रही है। मदिरापान की क्रूर लीलाओं का बखान भी बड़ा दुष्कर है। अंग्रेजी के महाकवि मिल्टन ने तो यहाँ तक कहा है कि—"संसार की समस्त सेनाएँ मिलकर भी जन-धन की इतनी हानि नहीं कर सकतीं जितनी एक अकेली मदिरापान की आदत करती जा रही है।" इस कथन के मर्म को समझकर हम मदिरा के विनाशकारी प्रपंच से भली-भाँति अवगत हो सकते हैं।

दोष—मदिरापान के

भगवान महावीर स्वामी का उपदेश है—"अपने संयम का संरक्षण करते हुए ममुक्षु सुरा, मेरक या अन्य किसी भी प्रकार का मादक रस आत्मसाक्षी से न पीये। मादक पदार्थों के मोह में फँसे व्यक्ति का सब कुछ नष्ट हो जाता है।"[1] उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन बिगड़ता जाता है। उसकी शारीरिक शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं, मानसिक संतुलन लुप्त हो जाता है। वह पाशविक व्यवहार करने लग जाता है और अन्ततः समय से पूर्व ही वह मृत्यु के मुख में समा जाता है। यही अकाल मरण है।

आचार्य हरिभद्र सूरि[2] ने मद्यपान के सोलह दोष एक श्लोक में गिनाये हैं—(१) शरीर का कुरूप और बेडौल हो जाना, (२) व्याधियाँ घर कर जाती हैं (३) परिवार तिरस्कार करता है। (४) कार्य का उचित समय हाथ से निकल जाता है, (५) द्वेष उत्पन्न होता है, (६) ज्ञान नष्ट हो जाता है, (७) स्मृति का ह्रास, (८) विवेक-बुद्धि का विनाश (९) सज्जनों से

---

१. सुरं वा मंरगंवामि, अन्नं व मज्जगं रसं
ससवखं न पिवे त्रिक्खु, जसं सा रक्ख मप्पणों—दशवैकालिक

२. वैरूप्या व्याधिपिंडः स्वजन परिवभ कार्यकालतिया तो।
विद्वेष ज्ञान नाशः समृति मति हरण विप्रयोगश्चसद्भिः।
पारूष्य नीच सेवा कुलयं विलयो धर्म कामार्थहानिः।
कष्ट षोड़पेत निरूपमय करा मद्यपान दोषाः ॥

वियुक्ति, (१०) वाणी का संयम और माधुर्य नष्ट हो जाता है, (११) नीचजनों की सेवा (१२) कुल-मर्यादा-प्रतिष्ठा की हानि (१३) शक्ति का ह्रास (१४) धर्म-हानि (१५) काम-क्षय (१६) अर्थ की हानि। मानव-जीवन की सभी श्रेष्ठताओं और उपलब्धियों की, सुखों और सिद्धियों की एक समग्र सूची है इस श्लोक में वर्णित हो गयी है, जिनका मदिरा निर्ममतापूर्वक विनाश कर देती है। मदिरापान का व्यसनी अपने जीवन को ही हार जाता है। व्यर्थ हो जाता है उसका सारा मूल्यवान भव।

क्या ऐसा भी होता है कि व्यसनी मदिरापान के इन भयावह दोषों से अनभिज्ञ हो? और इस कारण वह व्यसन में अधिकाधिक निमग्न होता जाता है। प्रायः सभी मद्यप अपनी कुटैव की परिणतियों से अपनी नियति से भली भाँति अवगत होते हैं, किन्तु फिर भी वे इस पिशाचिनी के मायाजाल से विमुक्त नहीं हो पाते हैं। यही प्रवृत्ति तो उन लोगों के लिए मद्यपान को एक लत का रूप दे देती है। ये १६ हानियाँ अथवा दोष तो प्रमुख हैं। इन महती विकृतियों से जुड़ी हुई कतिपय अन्य बुराइयाँ और भी हैं। कुल मिलाकर मद्यपान का सर्वसंहारी रूप बड़ा ही निर्मम और वीभत्स है। इसी कारण तो महात्मा गांधी ने भी कहा था—"शराब सभी बुराइयों की जननी है।" उन्होंने शराब की आदत को न केवल मद्यप व्यक्ति अपितु समाज और राष्ट्र के लिए भी विध्वंसक माना है जो सारे देश को ही विनाश के कगार पर ला खड़ा कर देती है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि शराब व्यक्ति के तन-मन-धन की अपार क्षति करती है। इससे शरीर के विभिन्न आन्तरिक अंगोपांग क्षतिग्रस्त और निष्क्रिय हो जाते हैं। अनेक घातक रोगों से मदिराभ्यस्त व्यक्ति घिर जाता है। उसके परिवार में आर्थिक विपन्नता आश्रय ले लेती है। एक की कुटैव सभी को दुखद परिस्थितियों में डाल देती है। न खाने को पर्याप्त अन्न होता है, न पहनने को वस्त्र। ऐसे परिवारों की नयी पीढ़ी के समुचित विकास और शिक्षा-दीक्षा की तो बात ही दूर है। मदिरा इस प्रकार पीढ़ियों की अवनति का कारण बन जाती है। मनुष्य इस कुमार्ग पर चलकर जो सर्वोच्च हानि करता है वह तो मानसिक-आध्यात्मिक है। उसके मनोजगत में अन्धकार छा जाता है। मदिरा मानवोचित सभी सद्भावनाओं और

सद्गुणों को नष्ट कर देती है। यही उसका मान्यता से अधःपतन है। शास्त्रों में कहा गया है कि जिस प्रकार अग्नि की एक मदिरा मनुष्य के विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, दया, क्षमादि भावों को नष्ट कर देता है।[1] ऐसे मद्यप और राक्षस में अन्तर ही क्या रह जायेगा। आसुरी वृत्तियों से लदा ऐसा मनुष्य कुछ भी करने से नहीं चूकता। सुकर्म और कुकर्म का भेद वह कर ही नहीं पाता। मनुष्य मद्य के अधीन होकर अत्यन्त निन्दनीय अकर्म करता है। वह इहलोक में और परलोक में भी अनन्त दुःखों का भागी हो जाता है। भगवान महावीर स्वामी का उक्त कथन मदिरापान से होने वाली आध्यामिक हानि की ओर स्पष्ट संकेत करता है। उसका लोक-परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। यह जीवन तो उसके लिए दुःखागार हो ही जाता है, आगे चलकर, उसके कर्मबन्धों से उत्पन्न दुःख उसके आगामी जीवन को भी नष्ट ही कर देते हैं। मानव जीवन बड़ा दुर्लभ होता है। इसे पाकर आध्यात्मिक उत्थान में इसका सदुपयोग करना ही विवेकशील जनों का कर्त्तव्य है। किन्तु यह मदिरा इस स्वर्णावसर को सर्वथा नष्ट कर देती है। यह अपने आराधक को कहीं का नहीं रखती है।

राष्ट्रीय-सामाजिक हानियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध में पराजय हुई थी फ्रान्स की। अब यह सर्वविदित हो गया है कि फ्रान्स की पराजय का मुख्य कारण उसकी सेना द्वारा मदिरापान किया जाना है। वियतनाम के युद्ध में अमेरीका को पर्लहार्बर की असफलता का सामना भी इसी कारण करना पड़ा कि अमरीकी सैनिक मद्यप हो गये थे। इतिहास साक्षी है कि मदिरापान की दुष्प्रवृत्ति के कारण ही द्वारिका नष्ट हुई, यादवों का विनाश हुआ। पाण्डवों को चाहे भूत ने दुर्दिन दिखाये हों, किन्तु कौरवों के विनाश के मूल में यही मदिरा रही है। शिवाजी की सेना अपने समय की श्रेष्ठ और पराक्रमी सेना मानी जाती थी। इसके पीछे मुख्य कारण यही था कि उनके सैनिक मदिरा से

---

१. विकेकः संयमो, ज्ञानं, सत्यं, शौचं, दया, क्षमा।
मद्यात् पलीयते सर्व तप्यां वह्नि कणादिवू ॥ –योगशास्त्र : हेमचन्द्र सूरी (३/१६)

दूर रहा करते थे। इस मदिरा ने कहाँ-कहाँ राष्ट्रीय गौरव को प्रभावित नहीं किया है। बाबर को जब ज्ञात हुआ कि उसके नशे की आदत उसके पराजय की कारण बनने वाली है तो उसने तुरन्त कोई आगा पीछा किये बिना मदिरा का त्याग कर दिया। मद्यपान का जितना अपव्यय होता है। वह भी राष्ट्र को प्रगति की दौड़ में पीछे धकेल देता है। एक आर्थिक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि भारत में यदि नशाबन्दी हो जाय तो हमारे देश की क्रयशक्ति १४० करोड़ रुपये बढ़ सकती है। इस व्यर्थ की वस्तु पर इतना व्यय किसी भी दृष्टि से उपयुक्त नहीं कहा जा सकता।

सामाजिक गौरव व सुख-शान्ति का विनाश

सामाजिक दृष्टि से मदिरापान सभी देशों में गौरवहीनता और अप्रतिष्ठा का सूचक नहीं माना जाता है—किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं कि उसकी विनाशक लीलाएँ प्रभावहीन हो गयी हों। हाँ, समाज का यह दृष्टिकोण इस विद्रूप और दूषित प्रवृत्ति को बढ़ावा अवश्य देता है जो अनन्तः उसी के लिए त्रासद सिद्ध होता है। पश्चिमी देशों में ही नहीं, हमारे अपने भारत में यह भयावह रोग अत्यन्त कुत्सित भूमिका निभाने लगा है। उच्च वर्गों की शान और विलासिता का सूचक शराब सभ्य और सुसंस्कृत होने का प्रतिमान भी बन बैठा है। किसी को सोसायटी, क्लबों में यह कहते संकोच होता है कि वह मदिरापान नहीं करता। जो यह कहे, वह पिछड़ा हुआ, अशिष्ट और दकियानूस कहलाने लगता है। मदिरापान रईसी की भी निशानी है, आधुनिकता का भी परिचय है और प्रगतिशीलता का प्राण भी है। किन्तु इसी मोड़ पर आकर यह प्रश्न भी अपनी घोर गम्भीरता के साथ विचारणीय हो गया है कि क्या यही मदिरा हमारे समाज के लिए अभिशाप नहीं हो गयी है? क्या मदिरा के कारण हमारा समाज विकृत और विघटित नहीं होता चला जा रहा है?

हमारे यहाँ अनेक परिवार मदिरा के कारण उजड़ते-बिखरते देखे जाते हैं। एक गृहस्वामी अपनी इस लत के कारण पूर्वजों का संचित धन और वैभव सब नष्ट कर देता है। जिसके घर से कोई याचक निराश नहीं लौटता था—वही इस लत से अभिशप्त होकर दर-दर का भिखारी हो जाता

है। वैभवपूर्ण प्रासाद तक बिककर मदिरा की भेंट चढ़ जाते हैं और परिवार निराश्रित होकर रह जाते हैं। बच्चे पिता होते हुए भी पिताहीन-अनाथ हो जाते हैं। किसी समाज की श्रेष्ठता का प्रतीक उसमें नारी का स्थान माना जाता है। जिस समाज में नारी को सम्मान प्राप्त होता हो वह कभी अनादर्शों, दुःखों और दुर्भाग्य का शिकार नहीं हो सकता। हमारा देश भी कभी इसी प्रकार का आदर्श स्थान रखता था, किन्तु इस अधम मदिरा ने उसे घसीट कर नीचे खींच लिया है। मद्यप की स्त्री नित नये अपमान सहन करती है। कहा जाता है कि ये स्त्रियाँ रोटी कम और लात अधिक खाती हैं। ये दुर्व्यसनी कामुक भी हो जाते हैं और पूज्य नारी जाति का पावन-चरित्र संकट में पड़ा रहता है। मदिरापान अपने वर्चस्व की चरम सीमा पर तो तब पहुँच ही गया है, जब नारियों के समूह में भी वह प्रिय हो बैठी है। मदिरापान के कामोत्तेजक प्रभाव में स्वयं नारियाँ भी अनहोना आचरण कर बैठती हैं। पश्चिमी देशों में तो अवैध सन्तानों में से ६०% ऐसी ही होती हैं जिनको जन्म देने वाली जननी मदिराधीन अवस्था में उन्हें अपने गर्भ में धारण करती है। कहाँ ले जा रहा है समाज को यह मदिरा का अभिशाप।

मदिराभ्यस्त गृहस्वामी का उचित मान-सम्मान शेष नहीं रह जाता। उसके अपने परिजन उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। छोटे-बड़े की मान-मर्यादा दूषित हो जाती है। शराबी के माता-पिता वात्सल्य छोड़कर उसकी मृत्यु की कामना करने लगते हैं। उसके पुत्र उसकी छाया से दूर भागते हैं। स्वस्थ्य जीवन मूल्यों को आंच आने लगती है। पहले तो दुर्जन ही मदिरापान किया करते थे—अब सज्जन भी मदिरापान कर दुर्जन होते चले जा रहे हैं। पशुपालक दुग्ध व्यवसाय करते हैं। गाय का दूध बेचकर बदले में शराब घर ले आते हैं—कैसी विडम्बना है।

अपराधवृत्ति और मदिरापान

आज हमारा समाज हिंसा और अशान्ति का केन्द्र होता चला जा रहा है। चारों ओर लूटमार, हत्या, चोरी, अनैतिक आचरण का साम्राज्य बना हुआ है। नित नये अपराध होने लगे हैं। धन तो आज असुरक्षित है

ही, जन भी सर्वथा असुरक्षित होता चला जा रहा है। किसी की जीवन लीला का पटाक्षेप कब, किन परिस्थितियों में हो जाय—कुछ कहा नहीं जा सकता। भाँति-भाँति के जघन्य अपराधों की विद्रूप विभीषिका व्यापकतर होती चली जा रही है। इन अशान्त और समस्यापूर्ण परिस्थितियों के मूल में भी मदिरा का प्रभाव पर्याप्त रूप में पाया जाता है।

मद्यप चाहे कितना ही समझ ले कि मदिरा उसके लिए घातक है—वह मदिरा का संग छोड़ नहीं सकता। उसे धर्माचार्य और उपदेशक कितना ही बोध दें, घर की दयनीय परिस्थिति कितनी ही विवश करे—वह मद्यप अपना आचरण परिवर्तित नहीं कर सकता, उसे मदिरा चाहिए ही। वह घर में चोरी करता है। जब घर अशक्त हो जाता है तो अन्यत्र चोरी करता है। यही मनोवृत्ति उसे ठगी, लूटपाट आदि अनेक आर्थिक अपराधों की ओर बढ़ाने लगती है। मदिरापान उसकी कार्यक्षमता कम करता है, स्वाभाविक रूप से आय में ह्रास होता है और मदिरा पर व्यय बढ़ता रहता है। पूर्ति के लिए ऐसे ही मार्ग अपनाने के लिए स्वप्रेरित होता रहता है इसके अतिरिक्त भी मदिरा अनेक प्रकार के अन्य अपराधों के लिए उत्तेजित करती है। आये दिन जो सड़क दुर्घटनाएँ होती हैं, उनमें से अधिकांश मदिराधीन वाहन चालन के कारण पायी गयी हैं।

मद्यपान के कारण होने वाले अपराधों की प्रचुरता का आभास इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि यदि मदिरा का उत्पादन ही बन्द हो जाय तो दो-तिहाई न्यायालयों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। एक अमरीकी न्यायाधीश डाक्सन की मान्यता है कि अपराधियों-बन्दियों पर होने वाले व्यय में ७५% की कमी आ जायगी। यदि नशाबन्दी कर दी जाय। ये आँकड़े अमरीका के सन्दर्भ में हैं, किन्तु साधारण से अन्तर के साथ सभी देशों में स्थिति लगभग इसी प्रकार की है। अमेरिका के विषय में कहा यह भी जाता है कि वहाँ प्रतिवर्ष २९ अरब डॉलर की विपुल धनराशि व्यय अपराधियों पर होता है। जिनमें से अधिकांश शराबी होते हैं। संयुक्त अमेरिका के १७ में से १२ राज्यों में किये गये सर्वेक्षण का परिणाम यह प्रकट करता है कि वहाँ के अपराधियों में से ५०% मद्यप होते हैं। कोलम्बिया में भी स्थिति विचित्र है। वहां ७१% अपराध शराब

के कारण होते हैं। यौन अपराधों में से ६०% जालसाजी के ५६% लूटमार के ६०% और चोरी के ४०% अपराध शराबियों द्वारा किये गये होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन का विश्लेषण किया जाय तो यही तथ्य प्रतिपादित हो जाता है कि विश्वस्तर पर अपराधों की दुनिया में ६०% आधिपत्य मदिरा ने स्थापित कर रखा है। यदि इसे अपदस्थ कर दिया जाय तो अपराधगांभीर्य न्यून और निस्तेज हो सकता है।

मद्यपजन हमारी करुणा और सहानुभूति के पात्र हैं

एक राज्य में कुछ वर्षों पूर्व नशाबन्दी लागू की गयी थी। औषधि रूप में जिन व्यक्तियों के लिए मदिरा सेवन अनिवार्य था, उनके लिए विशेष अनुज्ञापत्र का प्रावधान था। इस हेतु सम्बन्धित को एक आवेदन-पत्र भर कर देना होता था। इस निर्धारित प्रारूप में जानकारियाँ कुछ इस प्रकार प्राप्त की गयी थीं—"शराबी का नाम···शराबी के बाप का नाम···" आदि। कितने आदरजनक रूप में व्यवहार किया गया था। और आश्चर्य की बात तो यह है कि किसी व्यसनी को इस तरीके पर एतराज भी नहीं हुआ। उनका मानना तो यही रहता है कि जैसे-तैसे-कैसे भी मदिरा उपलब्ध हो। तभी जान में जान आए। इसके लिए उन्हें क्या करना है, या अन्य कोई उनके साथ क्या करता है—इस ओर ध्यान देने का अवकाश उन्हें नहीं। यदि शराब मिल गयी तो सब कुछ ठीक ही हो गया। मद्यपजन आत्मा का ऐसा पतन और हनन कर बैठते हैं। आत्मसम्मान और आत्मगौरव नाम की किसी वस्तु से तो उनका परिचय ही शेष नहीं रह जाता है। यह रोग रूढ़ और गूढ़ हो जाता है।

हाँ, यह सत्य है कि मदिरापान अनेक रोगों का जनक है, घोर पीड़ाजनक होते हैं ये रोग और अकाल मृत्यु के कारण भी बन जाते हैं। साथ ही यह भी एक अन्य सत्य है कि मदिरापान की प्रवृत्ति भी एक रोग है—महारोग है। इस दृष्टि से मदिरापान करनेवाला व्यापक स्तर पर संवदेना, सहानुभूति, सेवा और सहयोग का पात्र है। मद्यपजन क्रोध नहीं, हमारी करुणा के पात्र हैं। उन्हें हमारी घृणा नहीं, करुणोपचार मिलना

चाहिए। मदिरासेवन घातक है—हानिकारक है—अभिशाप है—यह जान कर भी वह मदिरात्याग नहीं कर सकता। जैन कथाओं में एक प्रसंग आता है—राजा श्रेणिक के राज्यत्व काल का। उनके राज्य में एक बधिक रहता था जो नित्यप्रति अनेक भैंसों का वध करता था। उसे वध कर्म से विरत करने के प्रयोजन से नरेश ने उसे अंधकूप में डाल दिया कि उसे वहाँ भैंसे मिलेंगे ही नहीं और उसकी प्रकृति परिवर्तित हो जायगी। कुछ दिनों बाद वे उस कूप पर गये और झाँककर भीतर देखा। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने देखा कि वह बधिक तो अब भी हिंसा में प्रवृत्त है। उसने कुएँ की गीली मिट्टी से भैंसा बना लिया था और एक छड़ी को तलवार की भाँति उठाए खड़ा था, वध के लिए तत्पर! सत्य है, जो स्वभाव प्रौढ़ और परिपक्व हो जाता है, उसे निर्मल करना सहज नहीं होता। किन्तु सोचना यह है कि क्या व्यसन त्याग असम्भव है? नहीं, वह कठिन तो हो सकता है, किन्तु असम्भव नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि व्यसनीजन दृढ़संकल्प के साथ मदिरा-त्याग की इच्छाशक्ति को प्रबलतर कर लें। यही एक महामंत्र है जो उनका कल्याण कर सकता है। कहा जाता है कि व्यक्ति मरता नहीं, वही स्वयं को मारता है। A man never dies, He kills hirely) यह सत्य है तब तो यह भी सत्य घटित हो सकता है कि व्यक्ति चाहे तो स्वयं को मरण (अकाल) से सुरक्षित कर ले। निश्चित् रूप से ऐसा वह अपने संकल्प से सत्य सिद्ध कर सकता है।

जो समस्या है, वह यही है कि ऐसा संकल्प बोदा रह जाता है। दुर्व्यसन की सशक्तता इतनी तीव्र होती है कि उसके समक्ष उसका संकल्प बेचारा अदना और बौना हो जाता है। तब यही अपेक्षित है कि किसी प्रकार उसके निश्चय को प्रबल बनाते रहने की प्रेरणा मिले। इसी पक्ष में उसे सभी दिशाओं से सहकार मिलना चाहिए। यह सहारा उसके लिए अमृततुल्य सिद्ध होगा। मद्यप से घृणा छोड़ें, उनसे सद्भावपूर्वक सहानुभूति रखें—यह सभी का एक पवित्र दायित्व है, नैतिक सामाजिक कर्म एवं धर्म है। घर-घर जाकर हमें अलख जगानी होगी। सभी प्रचार-माध्यमों का उपयोग हमें मदिरा विरोधी वातावरण निर्मित करने हेतु करना होगा।

होने पर धरना भी देना होगा। आंध्रप्रदेश की महिलाओं ने तो इस दिशा में अनुकरणीय पहल भी की है। मदिरा उत्पादन और विक्रय केन्द्रों पर भी यदि आवश्यक हो तो हमें हमारा अभियान चलाना होगा। मदिरा-विरोधी लोकशिक्षण की ज्योति जगानी होगी। कुल मिलाकर हमें व्यसनियों के मानसपरिवर्तन का कार्य करना होगा और वही, चाहे कितना ही छोटा क्यों न प्रतीत हो, किन्तु महान् उपलब्धिजनक सिद्ध होगा। अनुप्रेक्षा का अचूक प्रयोग इस सिद्धि में सहायक ही नहीं, संरक्षक भी बन सकता है। व्यसनियों का ध्यान मद्यपान के दुष्परिणामों पर केन्द्रित करने की यह प्रक्रिया रामबाण बन जायगी। इस सफल और समर्थ प्रक्रिया से अनेक संतप्तजन मदिरात्याग कर सुख भरे संसार में लौट आये हैं। शेष के उद्धार के लिए भी हम पूर्ण आत्मविश्वास के साथ सचेष्ट हो जाएं तो यह हमारी महान समाजसेवा होगी। पीड़ित को देखकर कोरी सहानुभूति में आँसू बहा लेने, दया से द्रवित हो जाने मात्र में मानवीयता अपने अपूर्ण रूप में निहित होती है। उसे पूर्णत्व तो तभी मिलता है, जब पीड़ित को पीड़ामुक्त करने के लिए हम सक्रिय हो जाएं।

मदिरा के इस महा अभिशाप से समाज का उद्धार करने के प्रयोजन से एक-एक प्रभावित व्यक्ति को सुधारना होगा। जो जिस विधि से सुधर जाय—वही जाँच-परख कर उसके लिए प्रयुक्त करें किन्तु अन्तिम लक्ष्य वही रहे। यह यात्रा दीर्घतर तो हो सकती है, किन्तु अन्तहीन नहीं। पूर्ण निष्ठा के साथ हमारी इस दिशा में प्रवृत्ति स्वयं ही हमारी देशभक्ति की भावना की परिचायिका हो जायगी।

यूनान का दार्शनिक डायोजनीज एक भव्य समारोह में आमंत्रित था। वहाँ उसे बड़ी ही कीमती शराब दी गयी। दार्शनिक ने चषक हाथ में लिया और उस जनसंकुल कक्ष से बाहर निकल आया। बाहर आकर उसने धरती पर चषक उलट दिया। मेजबानों ने आश्चर्य के साथ पूछा—यह आपने क्या किया—इतनी अच्छी शराब आपने मिट्टी में क्यों मिला दी? दार्शनिक डायजनीज ने हँसते हुए उत्तर दिया—"नहीं तो यह शराब मुझे मिट्टी में मिला देती।" यह छोटी सी घटना मदिरा-व्यसयनियों के लिए एक जीवन्त प्रेरणा बन सकती है। मदिरा के कुमार्ग पर लगे भाई-बहनों के मन में इस प्रकार की आस्था जगाने में भी यदि हम सफल हो सके—तो यह हमारी एक गौरवपूर्ण उपलब्धि होगी। उनके निराश मन को संबल चाहिए, उनके उपेक्षित जीवन को अपनाव और स्नेह चाहिए। यह सब-कुछ हम उन्हें दें और तब सुख-सदन के द्वार पर खड़े हो जाएं, उनका स्वागत करने के लिए। हमारी प्रतीक्षा अवश्य सफल होगी।

■■